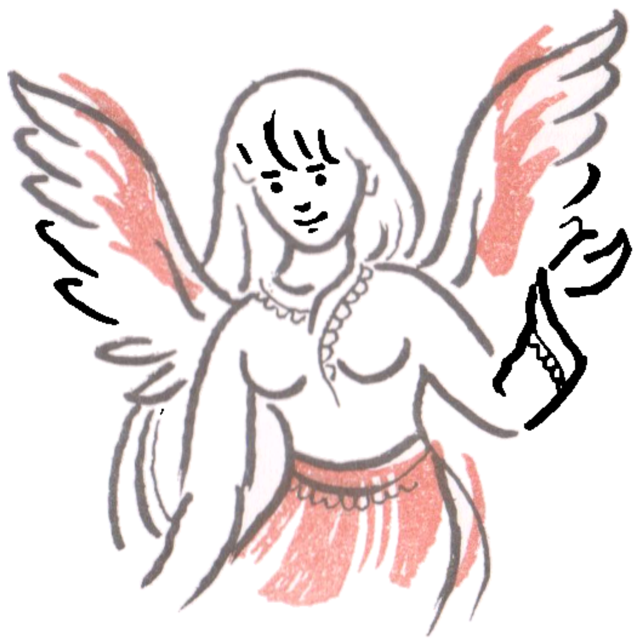
# मोती किसके

विष्णु प्रभाकर



# मोती किसके

विष्णु प्रभाकर



राजपाल

# अनुक्रम

# मोती किसके

सौराष्ट्र के एक छोटे से गाँव में एक किसान रहता था। बेचारा अनपढ़ था। थोड़ी-सी जमीन पर खेती करता था। एक बार जैसे ही बरसात शुरू हुई, उसका बैल मर गया। दुखी होकर वह मित्रों और सेठों के पास बैल खरीदने के लिए पैसे माँगने गया, लेकिन किसी ने उसकी सहायता नहीं की।

घनघोर वर्षा आरम्भ हो गई। किसानों के मन खुशी से भर उठे सबने जुताई शुरू कर दी, लेकिन वह किसान क्या करता। वह बहुत दुखी हुआ। तब उसकी पत्नी ने कहा, "स्वामी, बुवाई तो ठीक समय पर होनी ही चाहिए क्योंकि बोना और घी ताना यदि समय पर न हों, तो बेकार हो जाते हैं, इसलिए दूसरे बैल के स्थान पर मैं जुत जाऊँगी।"

किसान यह सुनकर बहुत दुखी हुआ, लेकिन और कोई रास्ता भी नहीं था। वह खेत में पहुँचा और हल में एक ओर बैल को और दूसरी ओर अपनी पत्नी को जोतकर खेत जोतने लगा। किसान जल्दी-जल्दी बुवाई करने की उतावली में तेजी से हल चला रहा था। उसकी पत्नी बेहद थक गई थी, लेकिन उसे इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी। संयोग से उसी समय वहाँ का राजा उधर से गुजरा। उसने यह दृश्य देखा तो उसका मन भर आया। किसान से बोला, "भाई, बैल के स्थान पर स्त्री को हल में जोतना उचित नहीं है? तुम इसे छोड़ दो। इतने निर्दयी मत बनो।"

किसान राजा को नहीं पहचानता था। बोला, "आया है, बड़ा दया दिखाने वाला। क्या तुझे पता नहीं है कि यह बुवाई का मौसम है। अगर अब बीज न बो सका तो क्या खाऊँगा ? बैल खरीदने के लिए किसी ने एक पैसा नहीं दिया।"

राजा ने किसान की यह बात सुनकर कहा, "तुम्हें बैल की जरूरत है। मैं अभी नया बैल मँगवाता हूँ।"

यह कहकर उसने अपने आदमी को बैल लाने के लिए भेजा। परन्तु किसान एक क्षण को भी रुकने को तैयार नहीं था। यह देखकर राजा ने कहा, "अरे भले आदमी, कुछ तो रुक। अभी बैल आ जाता है।"

किसान तिनककर बोला, "बड़ी दया आ रही है। तब तुम ही क्यों नहीं हल में जुत जाते?"

राजा ने तुरन्त यह बात स्वीकार कर ली और वह हल में जुत कर चक्कर काटने लगा। एक-दो फेरा देने के बाद ही नया बैल आ गया। किसान ने राजा को मुक्त कर दिया। राजा हँसते हुए वहाँ से चले गए।

फिर वर्षा बीत गई। खेतों में हरियाली छा गई। लेकिन जहाँ-जहाँ राजा के चरण पड़े थे, वहाँ एक भी पत्ती नहीं उगी। किसान बड़ा दुखी हुआ। बोला, "जरूर वह कोई पापी रहा होगा।"

लेकिन घर जाने से पहले उसने वहाँ की जमीन खोद डाली। उसके अचरज का ठिकाना न रहा। उसने देखा कि जहाँ-जहाँ राजा के चरण पड़े थे, वहाँ-वहाँ ज्वार के बदले सच्चे मोती झिलमिला रहे हैं। उसने सारी जमीन खोद डाली। उसके सामने सच्चे मोतियों का ढेर लग गया। अब तो उसके हर्ष और अचरज का कोई ठिकाना नहीं था। वह तुरन्त घर पहुँचा और सारी कहानी स्त्री को सुनाई। फिर दोनों उस व्यक्ति का पता लगाने के लिए निकले। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उनको पता लगा कि जिस व्यक्ति ने उन्हें बैल दिया था और जो स्त्री के स्थान पर जुए में जुता



था, वह और कोई नहीं, उस देश का राजा देपाल दे ही था।

अब तो किसान बहुत दुखी हुआ। उसने अपनी पत्नी से कहा, "मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। कैसी भूल मैंने की है। मैंने अपने राजा को भी नहीं पहचाना और न जाने कैसे-कैसे कटु शब्द कह डाले। ये सच्चे मोती अपने नहीं हैं, राजा के हैं। कल ही हम दोनों चलकर इन्हें राजा को सौंप आएँगे।"

और दूसरे दिन सवेरे किसान ने उन सब मोतियों को एक पोटली में बाँधा और पत्नी के साथ सीधे राज-दरबार जा पहुँचा। वह अनपढ़ था, लेकिन जाति का चारण था। राज-दरबार में पहुँचते ही अचानक उसके मुँह से यह दोहा निकला :

जो जानत तुझ हाथ, साँचा मोती नीपजै।
बपरावत दिन रात, देव तनै देपाल दे।

अर्थात् 'हे देवताओं जैसे राजा देपाल दे, मैं यदि पहले से यह जानता होता कि तुम्हारे चलने से सच्चा मोती उपजता है तो दिन रात तुमको काम में लगाए रहता।'

इतना कहकर उस किसान ने मोतियों की पोटली खोलकर राजा के सामने रख दी। राजा सहित सारी सभा उन मोतियों को देखकर चकित रह गई। तब चारण ने उन्हें सारी कथा कह सुनाई। राजा देपाल दे मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले, "भाई, ऐसी दशा में ये मोती मेरे नहीं हैं, तुम्हारे ही हैं। क्योंकि मैं अपनी इच्छा से ही तुम्हारे बैल की जगह जुत गया था।"

पता नहीं वे मोती किसे मिले। पता नहीं वे मोती ज़मीन में से निकले भी थे या नहीं पर इस कहानी से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि अच्छा काम करने का अच्छा परिणाम होता है। दूसरी यह कि जो राजा या शासक प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करता है, अपने को उसका सेवक समझता है वही महान होता है।

# तीन समन्दर गोपी चन्दर

शंकरी ने गजनन्दन को खिड़की से झाँकते हुए देख लिया था। चिल्लाकर बोली, "मास्टर जी आ गई। मास्टर जी आ गई।"

गजनन्दन अपना भारी भरकम शरीर लिये नीचे कूदे और शंकरी से चिपट गए, "वणक्कम[1] शंकरी दीदी। वणक्कम। कैसा है तुम।"

फिर गम्भीर होकर बोले, "तुम्हारा हिन्दी अभी तक ठीक नहीं हुआ।"

शंकरी हँसी, "कैसे होता, मास्टर जी नहीं थी।"

तब तक भइया और ऋता भी वहाँ आ गए थे। भइया और गजनन्दन पहले आ चुके थे। ऋता पहली बार आई थी। गजनन्दन ने कहा, 'शंकरी दीदी ! तुम्हारे यहाँ समन्दर है। ऋता के यहाँ हिमालय। समन्दर में पानी ही पानी, हिमालय में चट्टान ही चट्टान, बर्फ ही बर्फ।...

लेकिन दोनों ने उसकी बात नहीं सुनी। वे तो एक दूसरे को देखे ही जा रही थीं। गजनन्दन ने पूछा, "ऐसे क्या देख रही हो तुम लोग।"

ऋता ने कहा, "मैं देख रही हूँ तुम्हारी शंकरी दीदी की आँखें कितनी सुन्दर हैं। बाल कितने काले, लम्बे, चिकने और घने हैं..."

"और मैं देख रही हूँ," शंकरी बोली, "तुम्हारी ऋता दीदी का रंग कितना गोरा, गाल कितने लाल, आवाज कितनी मीठी..."

---

1. नमस्कार

भइया जोर से हँसे। गजनन्दन बोले, "ठीक है, ठीक है, पर हमें तो सबसे पहले ही कौडवांगा"।[1]

शंकरी ने कहा, 'हाँ-हाँ, गजनन्दन जी चाय ही नहीं कुछ और भी मिलेगा। आइए मेरे साथ।"

ऋता शंकरी का घर देखकर और भी खुश हुई। था तो छोटा पर खूब साफ सुथरा, चारों तरफ हरियाली, नारियल, केले के पेड़। दरवाजे पर अल्पना, बाहर खुला आँगन और झूला और दूर चमकता समन्दर का पानी। समन्दर देखने ही तो वह इतनी दूर आई है।

इसीलिए शंकरी की माँ ने उन्हें चाय पिलाई फिर खाना खिलाया। फिर शंकरी से कहा, "पहले इन्हें बाजार ले जाओ। वहीं से चट्टान पर ले जाना, दो बजने में अभी देर है।"

बाजार में तरह-तरह की चीजें देखकर ऋता का मन ललक उठा। उसने रंग-बिरंगी फोल्डिंग चटाई खरीदी, रंग-बिरंगे छोटे शंखों की मालाएं खरीदीं, सुन्दर-सुन्दर बड़े शंख खरीदे। फिर एकदम समन्दर की ओर देखकर बोली, "मैं तो सबसे पहले समन्दर के पास जाऊँगी। वह मुझे बुला रहा है।"

और वह दौड़ती हुई नीचे उतरी। पत्थरों पर कूदी, फिर लहरों के पास पहुँच गई। शंकरी पीछे जाते-जाते बोली, "पहाड़ की बेटी भी समन्दर की बेटी की तरह डरता नहीं।"

हाँफते-हाँफते गजनन्दन ने कहा, "ठीक है, ठीक है, डरता मैं भी नहीं।"

शंकरी बोली, "मास्टर जी, आप तो हाथी का बेटा है। आप क्यों डरेगी। आप से तो समन्दर डरेगी..."

तब तक ऋता किलकारी मारती कभी लहरों के साथ आगे बढ़ती, कभी पीछे हटती लेकिन एक बार लहरें इतनी तेज, इतनी ऊँची उठी

---

1. चाय पिलाइए

कि ऋता सिर से पैर तक खारे पानी से तर हो गई। फिर भी वह बहुत खुश हुई, हमारे हिमालय में तो गंगा इतनी तेज दौड़ती है इतनी तेज दौड़ती है कि कोई उसमें घुस ही नहीं सकता।

शंकरी बोली, 'वह हमारे समन्दर से मिलने के लिए ही इतना तेज दौड़ता है।'

गजनन्दन ने कहा, 'गंगा का प्यार पाकर ही तो समन्दर इतना ताकतवर हो गया है। तभी वह हमारे देश को घेरकर उसकी रखवाली करता है।'

ऋता बोली, 'सच। गजनन्दन जी, उत्तर से मेरा हिमालय देश को खुशहाल बनाता है। उसकी बेटियाँ धरती को सींचती हैं। अनाज पैदा करती हैं। पूरब, पच्छम और दक्खन में शंकरी का समन्दर व्यापार के रास्ते खोलता है। जहाज माल ले जाते हैं, लाते हैं।

गजनन्दन ने कहा, 'और यहीं पर बादल बनते हैं। पानी बरसाते हैं।

ऋता बोली, 'गजनन्दन जी, आप तो बहुत बुद्धिमान हैं।'

शंकरी हँसी, मास्टर जी बुद्धि के देवता गणेश जी की छोटी भाई हैं।

गजनन्दन मन में तो बहुत खुश हुए पर ऊपर से बोले, "ठीक है, ठीक है, शंकरी तुम अपनी हिन्दी ठीक करो। तुम स्त्री-पुरुष में भेद नहीं करतीं।"

शंकरी बोली, "मैं भेद क्यों करूँ ? स्त्री-पुरुष दोनों बराबर हैं।"

सब हँस पड़े। गजनन्दन बोले, "ठीक है, ठीक है। अब चट्टान पर चलो, दो बज रहे हैं।"

स्टीमर पर बैठकर चट्टान तक जाना ऋता को बहुत अच्छा लगा और वहाँ का ध्यान मन्दिर देखकर वह चकित रह गई। न शोर, न चकाचौंध। बहुत ही हलकी रोशनी। गौर से देखा बहुत से व्यक्ति फर्श पर आँखें बन्द किये बैठे हैं। वह भी बैठ गई। बहुत अच्छा लगा।

फिर ऊपर के मन्दिर में स्वामी विवेकानन्द की सुन्दर मूर्ति देखी। भइया ने उन्हें बताया, स्वामी विवेकानन्द जी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। संन्यासी बनकर घूमते-घूमते इधर आए तो तब यहाँ बस कन्याकुमारी का मन्दिर था और था समन्दर और किनारे पर दूर तक फैली रेत। स्वामी जी को समन्दर ने पुकारा। वे उसकी लहरों में कूद पड़े और तैरते-तैरते चट्टान पर पहुँच गए। जहाँ बैठकर उन्होंने ध्यान किया वहीं यह मन्दिर बना है।

ऋता दूर देखती हुई बोली, "भइया। समन्दर बहुत गहरा है।"

हाँ ऋता।

और हिमालय बहुत ऊँचा है।

भइया बोले, 'हाँ ऋता। समन्दर जितना गहरा है हिमालय उतना ही ऊँचा है।

ऋता ने कहा, 'और आदमी दोनों के सामने कितना छोटा, कितना दुर्बल पर कितना साहसी। ऊँचे से ऊँचे पहाड़ पर चढ़ जाता है गहरे से गहरे सागर की छाती पर नाव ले जाता है।'

शंकरी सुन रही थी, बोल उठी, "अरे ऋता जी तुम तो हमारे मास्टर जी से भी ज्यादा बुद्धिमान हो।"

गजनन्दन जोर से बोले, 'ठीक है, ठीक है। तुम तो इतना भी नहीं जानती कि इतना घूम लेने के बाद किसी को भूख-प्यास भी लग आती है।'

सब खूब हँसे। भइया ने कहा, 'सचमुच शंकरी। तुम्हें तो पता होना चाहिए कि तुम्हारे मास्टर जी हाथी के बेटे हैं।'

सोच रखा है भइया। गाँधी मंडप में उपमा, दोशा, बौंडा, बड़ा सब इनका राह देख रहा है।

यह सुनकर गजनन्दन गाँधी मंडप की ओर ऐसे दौड़े जैसे ओलम्पिक की दौड़ में सोने का तमगा उन्हें ही मिलेगा। इतना ही नहीं खाते वक्त भी सबसे आगे रहे, लेकिन ऋता तो सारे समय वहाँ बैठी

स्त्रियों-बच्चों को देखती रही। उनकी आँखें उनके लम्बे बाल उनकी वेणियों में फूल सजाने की कला। एक बार तो शंकरी की मदद से उसने उनसे बातें भी कीं पर तब उसे बड़ा मजा आया जब एक युवती माँ ने अपने बच्चे को हिन्दी में डाँटा। बच्चा बड़ा शैतान था—बार-बार भाग जाता। प्यार से मना करने पर भी वह नहीं माना तो बोल उठी, "बदमाश, उधर नहीं जाने का। थप्पड़ मारूँगी।"

चौंककर सभी ने उस ओर देखा। गजनन्दन बोल उठे, "देख भइया। ये लोग प्यार अपनी भाषा में करते हैं और डाँटते हैं राष्ट्रभाषा में। आई प्रोटेस्ट।'[1]

ऋता ने हँसते-हँसते कहा, 'गजनन्दन जी ! आप से तो अच्छे ही हैं। गुस्सा आने पर ही सही राष्ट्रभाषा बोलते तो हैं। आप तो गुस्सा आने पर अंग्रेजी बोल रहे हैं। यह तो गुलामी की भाषा है।'

गजनन्दन चोट खाकर भी खूब हँसे। शंकरी तब तक गाँधी मंडप के अन्दर की ओर चल पड़ी थी। वे सब भी अन्दर पहुँचे। बहुत अच्छा था यहाँ भी, साफ-सुथरा और शान्त। शंकरी ने बताया, 'ऋता बहन ! वह देखो ऊपर जो छेद है, 2 अक्टूबर को उससे आकर सूरज का पहला किरण गाँधी जी की मूर्ति पर पड़ता है।'

ऋता ने चकित होकर कहा, 'सच।'

हाँ जी, हमारा देश का कलाकार बहुत चतुर है।

भइया बोले, 'चलो ऋता ऊपर चलें। वहाँ एक और चीज है देखने को।'

ऊपर सचमुच जहाँ तक नजर जाती समन्दर फैला पड़ा था। उछलता, उमंगता, चमकता पानी और पानी। ऋता कहीं खो गई। हिमालय आसमान को छूता है और समन्दर उसके छोर को कि भइया बोल उठे, "ऋता, वह देखो हमारी बाईं ओर जो समन्दर है वह उत्तर

1. मैं विरोध करता हूँ।

में बंगाल तक फैला है। उसे बंगाल की खाड़ी कहते हैं। इसमें हमारी बड़ी-बड़ी नदियाँ गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र के साथ महानदी गोदावरी, कृष्णा, कावेरी गिरती हैं और सब मिलकर हिन्द महासागर में समा जाते हैं। हमारे दाएँ अरब सागर है इसमें सिन्ध के साथ पंजाब की सारी नदियाँ मिल जाती हैं और फिर सब हिन्द महासागर में खो जाती हैं।

हाँ भइया। आपने ठीक कहा। उत्तर में जो ऋता दीदी का हिमालय सिर ऊँचा किए खड़ा है वह वहीं से शंकरी के सागर में जल भरता रहता है।

शंकरी बोली, 'और फिर सागर बादलों के जरिए उस पानी को वापस वहीं भेज देता है।'

भइया ने कहा, 'हाँ शंकरी, जो हम देते हैं वही फिर हमें वापस मिल जाता है। एक और बात है। वह जो कन्याकुमारी का आखिरी छोर है जहाँ तीनों सागर मिलते हैं वहाँ तीनों सागरों की मिट्टी का रंग अलग-अलग है पर पानी एक है जैसे इन्द्रधनुष में रंग तो सात होते हैं। पर है वह एक ही।

शंकरी ने खतरे की घंटी बजाई, "अब चलें। सूरज को छिपते देखने से पहले कन्याकुमारी का मन्दिर भी देखना है।"

मन तो नहीं कर रहा था पर लौटना पड़ा। कन्याकुमारी के मन्दिर में भइया और गजनन्दन को तहमद लगाकर नंगे बदन अन्दर जाना पड़ा पर काले पत्थर की बनी कुमारी की मूर्ति बहुत सुन्दर थी और उसकी कहानी भी। शंकरी ने बताया, "कहानियाँ तो बहुत हैं पर पता नहीं सच क्या है। एक कहानी बताती हूँ। कहते हैं इस देश के राजा भरत थे। उनके आठ बेटे और एक बेटी था। राजा ने अपना राज सबमें बराबर बाँट दिया। बेटी कुमारी के हिस्से में दक्खन का राज आया। इसीलिए इसे 'कुमारी नाडू' कुमारी का राज कहने लगे। इस शहर का नाम था, 'कुमारीयपक्ष' यानी कुमारी का निवास स्थान। अब

इसे कन्याकुमारी कहते हैं।

वहाँ से वे दाईं ओर मुड़ गए। सूरज धीरे-धीरे नीचे उतर रहा था। वे एक मंडप की दीवार पर आकर बैठ गए। सारे आकाश में लाली फैल रही थी। समन्दर में वही रंग चमक रहा था। चारों तरफ शांति छाने लगी थी। बस सूर्य को अस्त होते देखने को एक भीड़ जरूर वहाँ इकट्ठी हो गई थी। ऐसा लगता था भगवान कोई चित्रकार है जो तेजी से रंग भर रहा है।

जैसे-जैसे सूरज देवता नीचे आते उनकी चाल तेज होती। पानी में चमक बढ़ती। वह सूरज का स्वागत कर रहा था। ऋता बोली, "पानी को देखकर सूरज देवता कैसे दौड़ रहे हैं।"

शंकरी ने कहा, "अपनी माँ को सामने देखकर कौन नहीं दौड़ता।"

सहसा सूरज देवता और भी तेजी से भागे। पानी उछला, सूरज देवता ने छलांग मारी और समुद्र में गायब हो गए। माँ ने ललककर जैसे उन्हें आँचल से ढक लिया। बस उनकी लाली रह गई।

कई क्षण कोई नहीं बोला। फिर सब लौट चले। बस का भोंपू भी बज रहा था।

ऋता बोली, "मेरा तो मन नहीं करता भइया यहां से जाने को।"

लेकिन उन्हें जाना था। विदा के समय तो सबके मन भर आए। गजनन्दन चुपचाप अपनी सीट पर जा बैठे। ऋता शंकरी को छोड़ती ही नहीं थी बोली, "वायदा करो तुम गंगोत्री आओगी समन्दर का प्यार लेकर।"

"आऊँगा" शंकरी इतना ही कह पाई। फिर उसने मास्टर जी की ओर देखा, बोली नहीं। बस का भोंपू फिर बजा। तभी शंकरी का भाई दौड़ता हुआ आया और कुछ कहते हुए पैकेट शंकरी को दिया।

शंकरी ने वह पैकेट ऋता को देते हुए इतना ही कहा, "माँ ने दिया है।" और आँसू पोंछते हुए नीचे उतर गई। जब बस चली तो गजनन्दन ने सिर बाहर निकालकर जोर से कहा, "वणक्कम शंकरी।

मैं फिर आऊँगा तुम्हें लेने, वणक्कम।"

और जब तक एक दूसरे को देख सके वे हाथ हिलाते रहे। ऋता ने कहा, "भइया। वह खेल है न हमारा 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' अब मैं उसे ऐसे कहूँगी...

तीन समन्दर गोपी चन्दर
बोल मेरी मछली कैसा पानी
प्यार का पानी प्यार का पानी।

# सुख कहाँ है

एक था किसान। नाम था उसका धर्मचन्द। उसके तीन बेटे थे—बड़ा सन्तोष चन्द, मँझला हेमचन्द और छोटा कर्मचन्द।

उन लोगों के पास काफी ज़मीन थी। अच्छी पैदावार होती थी। अच्छे खाते-पीते आदमी थे वे—सुखी और संतुष्ट।

जैसा कि होता है, धर्मचन्द एक दिन बूढ़ा हो गया। उसने तय किया कि वह सब तीर्थों की यात्रा करेगा। तो उसने अपने तीनों बेटों को बुलाया। ज़मीन के तीन हिस्से किए और कहा, "अगर तुम मेहनत और ईमानदारी से काम करोगे, तो तुम्हें कभी कोई कठिनाई नहीं होगी तुम दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करोगे।"

उसने और भी बहुत-सी बातें उन्हें समझायीं। फिर सबको आशीर्वाद देकर वह यात्रा पर चल पड़ा।

तीनों बेटे अलग-अलग अपने काम करने लगे। बड़े बेटे सन्तोषचन्द ने सदा की तरह अपने हिस्से की ज़मीन को जोता-बोया। पानी भी वक्त पर बरसा। अच्छी फसल हुई। उसे इतना अनाज मिल गया कि खाने-पीने के लिए रख लेने के बाद मंडी ले जा सके। मंडी में उसे जो पैसा मिला, उससे उसने दूसरी ज़रूरी चीजें खरीदीं। संतोषचन्द बहुत खुश था।

अगले साल अकाल पड़ा। अनाज बहुत कम हुआ, लेकिन गुज़ारे के लायक काफी था। कुछ पैसा भी उसके पास जमा हो गया था। उसे कोई बहुत ज्यादा कठिनाई नहीं हुई। कभी कम, कभी अधिक,

हर साल उसे अपनी ज़रूरत की चीजें मिल जाती थीं। कभी कठिनाई होती, तो भी वह सन्तोष कर लेता था।

पर हेमचन्द वैसा सन्तोषी नहीं था। उसकी आँखें बहुत दूर तक देखती थीं। जितनी ज़मीन उसके पास थी, उससे उसका और उसके परिवार का गुज़ारा हो सकता था। लेकिन उसने कहा, "गुज़ारा ही क्यों हो ? जब जीना है तो शान से जीना चाहिए। उपज बढ़ाने के उपाय सोचने चाहिए। अच्छा बीज लाना चाहिए। अच्छी खाद देनी चाहिए। पानी का प्रबन्ध होना चाहिए।"

बस, उसने जो कुछ कहा था, उसे पूरा करने में वह लग गया। मंडी में जाकर उसने अच्छे-से-अच्छा बीच और बढ़िया-से-बढ़िया खाद खरीदी। ट्यूबवेल भी उसने लगवा लिया। बस, खेत लहलहा उठे।

भरे-भरे, हरे-हरे, घने-घने खेतों को देखकर हेमचन्द उछलने लगता। उन्होंने कटाई के लिए भी ट्रैक्टर मँगवा लिया। जो काम दूसरे किसान कई-कई दिन लगकर करते, धर्मचन्द उतना ही काम कुछ घंटों में ही पूरा कर लेता। उसके गोदाम भर गए।

अगले साल अकाल पड़ गया। मंडियों में अनाज ही नहीं था। तब हेमचन्द ने अपना अनाज बाहर निकाला। मुँहमाँगे दाम मिले। एक ही साल में हेमचन्द मालामाल हो गया। तीसरे साल, चौथे साल, पाँचवें साल उसका लालच बराबर बढ़ता गया। गोदाम भरते गए। तिजोरियाँ भरती गईं। नया पक्का घर बन गया। घर में आराम की चीजें आ गईं। लोग देखते, तो उसकी तारीफ नहीं करते, गाली देते।

ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि देश में अकाल पड़ रहा था। लोग भूखे मर रहे थे। लेकिन हेमचन्द और उसके परिवार वाले बड़ी शान से रहते थे।

आखिर, ऐसा कब तक होता ? लोगों की भूख जब बहुत बढ़ गई, तो उन्होंने हेमचन्द के गोदाम लूटने शुरू कर दिए। घर लूट लिया। अनाज लूट लिया। यहाँ तक कि एक दिन सब कहीं आग लगा दी।



सरकार भी तो हेमचन्द से नाराज़ थी। उसने चोरी से अनाज जमा किया था। फिर चोरबाज़ारी की थी। इसलिए जो कुछ बचा, उसे सरकार ने अपने कब्जे में कर लिया—उन्हें देने के लिए जिन्हें ज़रूरत थी।

तो इस प्रकार हेमचन्द अमीर बना, लालची बना, चोर बना। बिना लालच और चोरी के कोई अमीर बनता है क्या ? और बनता है, तो उसका परिणाम भुगतना पड़ता है।

वह फिर गरीब हो गया। गरीब होना उतना बुरा नहीं जितना लोगों की नज़र में बुरा बनना। सब लोग हेमचन्द से नफ़रत करने लगे। बुरे आदमी से सभी नफ़रत करते हैं।

इस प्रकार हेमचन्द का लालच हेमचन्द को खा गया। उसने उपज बढ़ाई केवल अपने लिए। इसीलिए वह मारा गया।

उपज कर्मचन्द ने भी बढ़ाई। उसने भी अच्छा बीज खरीदा। खेतों में बढ़िया और अच्छी खाद दी। पानी के लिए ट्यूबवेल लगवाए। उसके खेत भी भरे-भरे, हरे-हरे, घने-घने लहलहाने लगे। उसने भी ट्रैक्टर मँगवाया, गोदाम बनवाए। उसके भी गोदाम भर गए। हेमचन्द से भी बढ़िया अनाज हुआ उसके खेतों में, लेकिन उसने गोदामों पर ताला नहीं लगाया। सरकार ने जितना माँगा, उतना ही दिया। बाकी मंडी में ले जाकर बेच दिया। अपने पास उतना ही रखा, जितने की उसे ज़रूरत थी।

जो किसान सबसे अच्छा अनाज पैदा करता यानी सबसे अधिक पैदा करता है, सरकार उसका सम्मान करती है। बस, सरकार ने कर्मचन्द को 'कृषि पंडित' की उपाधि दी, क्योंकि उसने सारे भारत में एकड़ में सबसे अधिक गेहूँ पैदा किया था।

कर्मचन्द की खुशी का ठिकाना नहीं था। लेकिन इस खुशी से उसका दिमाग खराब नहीं हुआ। न उसने अनाज चुराकर रखा, न दाम बढ़ाए, बल्कि और मेहनत की। तरक्की करने के और नए-नए तरीके

ढूँढ़े। उसकी पत्नी, बच्चे, दोस्त, सबने उसका साथ दिया। जो अच्छा काम करता है, सब उसका साथ देते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि जब अगले साल अकाल पड़ा, तो कर्मचन्द के खेतों में फिर भी अच्छा अनाज पैदा हुआ। उसने वह सब अनाज या तो सरकार को दे दिया या मंडी में भेज दिया।

सरकार उसके काम से बहुत खुश हुई। उसकी सलाह माँगने के लिए दूर-दूर से लोग आते। दूर-दूर के लोग उसे बुलाते। एशिया, यूरोप, अमरीका, सब कहीं जाकर अपने-अपने अनुभव उसने सुनाए। बताया, "धरती तो रत्नगर्भा है, यानी उसके अन्दर रतन भरे पड़े हैं। लेकिन उसको पाने का तरीका होता है। जो सही तरीका अपनाता है, उसे रतन मिलते हैं। जो लालच में पड़ जाता है, वह पाकर भी खो देता है। अपने लिए सब कुछ नहीं रखना चाहिए। पहले दूसरों को देना चाहिए यानी बाँटकर खाना चाहिए।"

आखिर, पाँच साल बीत गए। धर्मचन्द तीर्थयात्रा करके खुशी-खुशी घर लौटा। सबसे पहले बड़े लड़के के पास गया। देखा, सन्तोषचन्द और उसके परिवार के सब लोग सन्तुष्ट हैं, अपने में मस्त हैं। धर्मचन्द को बहुत अच्छा नहीं लगा। जो केवल अपने लिए ही जीता है, उसका जीना कोई जीना नहीं होता।

फिर वह मँझले बेटे के पास गया। वे सब बुरी हालत में थे। हेमचन्द जेल में था। नया घर जला पड़ा था। बड़ा पोता आवारा हो गया था। वह अपने साथ अपनी बहन को भी शहर ले गया था। किसी को कुछ पता नहीं था, वे कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं।

धर्मचन्द बहुत दुखी हुआ, लेकिन उसके लिए उन्होंने अपने बेटे को ही दोष दिया। सारा अपराध उसी का था। बड़ा बेटा तो केवल अपने लिए जीता था। दूसरों को परेशान नहीं करता था। चोरी नहीं

करता था। लालच सब दोषों की माँ है। इसीलिए उसने पाकर भी सब कुछ खो दिया।

फिर वह तीसरे बेटे के पास पहुँचा। वहाँ खुशी का समन्दर लहरा रहा था। कर्मचन्द अमरीका गया हुआ था।

बहू ने और पोते-पोतियों ने धर्मचन्द को देखा तो फूल उठे। बड़े आदर से उनके पैर छुए। गद्गद होकर धर्मचन्द ने उन्हें आशीर्वाद दिया। वह जिधर भी देखता, उसे हरियाली नज़र आती। खेतों की हरियाली से भी बढ़कर मन की हरियाली होती है।

धर्मचन्द की छाती फूल उठी। उसे यहाँ आकर सचमुच बड़ा अच्छा लग रहा था। उसने मन-ही-मन कहा, 'जो दूसरों के लिए जीता है, वही जीना जानता है।'

# त्याग और तिलक

कमला परेशान थी। वह ब्राह्मण थी और उसका बेटा रहता था भीलों के साथ। वह उसे देना चाहती थी धर्म की शिक्षा। पढ़ाना चाहती थी शास्त्र, पर वह घूमता रहता था वनों-जंगलों में। ढूँढ़ता रहता था वनेले पशुओं को। चलाता रहता था धनुष बाण।

माँ बड़ी दुखी होती। वह माँ को प्यार तो खूब करता था पर उसकी यह बात वह नहीं मानता था। और सच तो यह है कि इसमें उसका कुछ कसूर भी नहीं था।

क्यों नहीं था ? क्योंकि वह कमला ब्राह्मणी का अपना बेटा नहीं था। कमला ने तो उसे पाला था। उसका नाम भी तो ब्राह्मणों जैसा नहीं था।

एक दिन किसी ने कमला से पूछा, ''तुम्हारे बेटे का नाम क्या है ?'

कमला ने उत्तर दिया, ''गोह।''

सुनकर सब चकित रह गए, ''यह कैसा नाम है ?''

कमला ने समझाया, ''यह गुहा में पैदा हुआ था। इसलिए इसका नाम रखा गया 'गोह'।'

'गोह' तो भीलों जैसा नाम है। काम भी यह राजपूतों जैसा करता है। आग की तपिश क्या कहीं छिपाए छिपती है। फूल की गन्ध ही फूल को प्रकट कर देती है।

सचमुच ही वह राजपूत था। गुजरात के राजा शीलादित्य का बेटा।

उसकी माँ थी रानी पुष्पवती।

हुआ यह कि रानी पुष्पवती जब माँ बनने वाली थी तो वह देवी माता की पूजा करने अपने मायके चली गई। पीछे से गुजरात पर हूणों ने हमला कर दिया। राजा शीलादित्य बड़ी वीरता से लड़ा और लड़ते-लड़ते मारा गया। रानियाँ उसके साथ ही जलकर सती हो गईं। उन दिनों ऐसा ही होता था। राजा की कई रानियाँ होती थीं। राजा मर जाता तो वे भी उसके साथ जिन्दा जल जातीं।

पर रानी पुष्पवती बची रह गई। वह मायके जो गई हुई थी। लौटते हुए उसे रास्ते में सब समाचार मिले। बहुत रोई पर वह मर नहीं सकती थी। माँ जो बनने वाली थी।

वह पति के घर नहीं गई। माँ के घर भी नहीं गई। वहीं एक गुहा में रहने लगी। वहीं एक दिन उसके एक बेटा पैदा हुआ। पास ही एक गाँव था वीर नगर। जब चलने लायक हुई तो वहाँ जा पहुँची। कमला ब्राह्मणी से परिचय हुआ। बहुत भली थी कमला। पुष्पवती उसी के साथ रहने लगी। दोनों में प्यार हो गया। दोनों बहन बन गईं। समान गुण वाले बहुत जल्दी एक हो जाते हैं।

पर रानी को बराबर राजा की याद आती। वह तड़प-तपड़ उठती। आखिर उससे रहा नहीं गया। उसने कमला को सब कुछ बता दिया। बोली, "बहन, मैं इसी बेटे के कारण अब तक जिन्दा हूँ। अब तुम इसे पालो। इसकी माँ बनो। मैं तो अपने राजा के पास जाती हूँ। इसे धर्म की शिक्षा देना। शील सिखाना। बड़ा होने पर किसी राजपूत की बेटी से इसका विवाह कर देना।"

कमला ने बहुत समझाया पर रानी तो निश्चय कर चुकी थी। चिता पर चढ़कर अपने राजा के पास चली गई। कमला के अपना कोई बेटा नहीं था। बेटी भी नहीं थी। उसने गोह को ही अपना बेटा मान लिया। उसी पर अपना प्यार लुटाने लगी। कोई जान ही नहीं सका कि गोह उसका अपना बच्चा नहीं है।

लेकिन जब वह बड़ा हुआ तो उसकी आदतें देख-देखकर सब चकित होने लगे। सोचने लगे कि यह कैसा ब्राह्मणी का बेटा है। न संध्या, वन्दन। बस भीलों के बच्चों के साथ वन-वन भटकना, शिकार खेलना, राजपूतों जैसे साहस के काम करना।

लेकिन क्षत्रिय का बेटा क्षत्रियों जैसे काम न करेगा तो क्या वेद पाठ करेगा। उसकी रगों में तो क्षत्रिय का खून था। उसे तो उबलना ही था। सो उबलता रहता था और गोह संकट भरे, जोखम भरे काम करता रहता था।

धीरे-धीरे वह बड़ा हुआ, जवान हुआ, बाँका जवान। तभी एक दिन क्या हुआ ? उसके साथियों ने तय किया कि आओ राजा बनने का नाटक करें।

लेकिन राजा कौन बनेगा।

'गोह'—सबने गर्व से उसकी ओर देखकर कहा। इससे अधिक सजीला जवान और है कौन ? यही राजा बनेगा। यह तो बना बनाया राजा है।

सो गोह राजा बना। उसे एक सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिर पर छत्र ताना गया। सिंहासन बना पेड़ के तने और डालों का। छत्र बना बाणों का। मूँज के चँवर बने। दो किशोर सिंहासन के दोनों ओर खड़े होकर उन्हें डुलाने लगे।

और भी सभी वस्तुएँ आ गईं। साथियों में से कोई मन्त्री बना, कोई सेनापति, कोई राजपुरोहित। बाकी सब दरबारी।

तिलक के लिए चन्दन, चावल, दूब, कलावा आदि सभी चीजें उन किशोरों ने दौड़-दौड़कर इकट्ठी कीं। पूजा के लिए गणेश-लक्ष्मी भी आ गए। बड़ा आनन्द आ रहा था उन्हें इस खेल में। उन्होंने चिल्लाकर कहा, पुरोहित जी ! जल्दी करो मुहुर्त बीता जा रहा है।

मंत्र पढ़ने का नाटक करते हुए पुरोहित जी पूजा की थाली लिये आगे बढ़े। गोह के माथे पर जल के छीटें मारे। लेकिन जैसे ही तिलक

करने को हुए एक भील युवक पुकार उठा, "ठहरो।"

सबने हैरान-परेशान होकर उस युवक की ओर देखा। उस युवक ने दाहिने हाथ में बाण लेकर जोर से बाएँ हाथ में चुभो दिया। एकदम लाल-लाल लहू बह निकला। उसी लहू से चन्दन को रँग कर उसने कहा, राजा का तिलक इससे करो पुरोहित जी। रोली आपके पास नहीं है।

पुरोहित जी ने ऐसा ही किया। अब तक सभी दम साधे देख रहे थे। अब राजा गोह की जय-जयकार कर उठे, "भीलराज गोह की जय। भीलराज गोह की जय।"

गोह की छाती फूल उठी। मस्तक तन गया। वह जैसे खेल का नहीं सचमुच का राजा बन गया था। उसके माथे पर रक्त चन्दन का टीका लग चुका था। उसने अपने उस साथी को गले से लगा लिया।

इस नाटक की कहानी सबने सुनी। वहाँ के राजा ने भी सुनी। वह ईडर का इलाका था। वहाँ का राजा भीलराज मंडलीक था। उसने गोह और उसके साथियों को दरबार में बुला भेजा।

गोह को देखा तो चकित रह गया। कैसा सजीला जवान है। भुजाएँ कितनी लम्बी हैं। माथा कैसे दिपो-दिपो कर रहा है। आँखें कैसी चमक रही हैं। छाती कैसी तनी है। आग कहीं छिपी रहती है। यह तो सचमुच का राजा है।

भीलराज बूढ़े हो चुके थे। उनके कोई बेटा नहीं था। कई क्षण आँखें गड़ाए देखते रहे। फिर पुतलियाँ हिलीं। आँसू छलके। गर्व और प्यार के आँसू। वे सिंहासन से उतरे। गोह को दोनों बाँहों में लेकर छाती में भर लिया। बोले, "तुम्हारी ही राह देख रहा था बेटे। आज से ईडर के राजा तुम हुए। तुम्हारे माथे पर भीलों के रक्त का टीका लग चुका है। तुम गोह हो। तुम्हारा वंश गोहलौत कहलाएगा। मैं अब चला वन को, बूढ़ा हो गया हूँ न ?"

और गोह को गद्दी पर बिठाकर भीलराज बन चले गए। गोहलौत

वंश की कहानी राजपूतों के इतिहास में बार-बार चमकी पर भीलराज मंडलीक की उदारता और उनके त्याग की कहानी कितने लोग जानते हैं।

ऐसे ही अजाने त्यागियों के त्याग के बल पर संसार टिका है।

# न्याय

ओरछा के महाराज वीरसिंह देव के बारह बेटे थे। उनमें से एक का नाम था प्रवीरराय। स्वभाव का वह बड़ा क्रोधी था। इसलिए उसका एक और नाम पड़ गया था—बाघराज।

एक दिन वह चला शिकार खेलने। पहुँचा 'लंका वन।' ओरछा के दुर्ग के पीछे दो वन-खंड थे। एक का नाम था 'लंका वन' और दूसरे का 'अयोध्या वन'। 'लंका वन' में शिकार खेल सकते थे। 'अयोध्या वन' में शिकार खेलना मना था। जीवहत्या वहाँ नहीं हो सकती थी।

प्रवीर ने देखा, मृगों का एक झुंड सामने है। बस उसने निशाना साधा, पर मृग जितने सुन्दर होते हैं उतने ही चौकन्ने भी। तुरन्त पहचान गए कि सिर पर संकट है। भाग चले। आगे-आगे मृग, पीछे-पीछे प्रवीर। भागते-भागते मृग सीधे जा पहुँचे 'अयोध्या वन' में। थे न चतुर! अब एक प्रवीरराय आए, चाहे हजार प्रवीरराय आएँ, उन्हें कोई नहीं मार सकता। वे सुरक्षित वन में सुरक्षित थे।

प्रवीरराय भी जानता था कि वह 'अयोध्या वन' में नहीं घुस सकता। लेकिन क्रोधी था न ! फिर राजकुमार भी था। सुना है न तुमने, 'एक तो करेला फिर नीम चढ़ा।' उसने अपने साथियों को आज्ञा दी, "जाओ, इन मृगों को घेरकर वापस 'लंका वन' में ले आओ।"

साथी बोले, "लेकिन 'अयोध्या वन' में जाना मना है, राजकुमार।"

प्रवीर ने उत्तर दिया, "होगा। आज मेरी आज्ञा है। तुम तुरन्त

जाकर मृगों के झुंड को घेर लाओ।"

साथी फिर बोले, "पर राजकुमार वहाँ तो मृगों को हम छेड़ ही नहीं सकते।"

प्रवीर ने उत्तर दिया, "मैं तुमसे बहस करना नहीं चाहता। मेरी आज्ञा का पालन होना चाहिए। बस।"

साथी अब क्या करते। समझ गए, कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। बेबस बेचारे 'अयोध्या वन' में गए। चलते-चलते पहुँच गए बेतवा नदी के तीर पर। वहीं पर एक महात्मा रहते थे। उनसे पूछा, "यहाँ मृगों का कोई झुंड आया है ?"

महात्मा ने उत्तर दिया, "आया है, पर तुम्हें उससे क्या ?"

साथी बोले, "राजकुमार प्रवीर इनका शिकार करना चाहते हैं। ये इधर भाग आए हैं।"

महात्मा हँसे, "पर ये मृग तो इसी वन के हैं। क्या राजकुमार नहीं जानते कि यहाँ के मृगों को कोई नहीं मार सकता।"

साथी बोले, "जानते हैं, पर अपनी हेठी कैसे होने दे सकते हैं ? राजकुमार जो हैं।"

महात्मा ने दृढ़ता से कहा, "तो क्या हुआ ? उनसे कह दो कि ये मृग नहीं मारे जा सकते।"

बेचारे साथी अपना-सा मुँह लेकर लौट आए। प्रवीर उनकी कहानी सुनकर जैसे आग-बबूला हो उठा। आँखों में खून उतर आया। राजमद अन्धा होता है न ! इसलिए वह किसी का आदेश कैसे मान सकता था। उसने घोड़े को ऐड़ लगाई और कुछ ही देर में वहाँ पहुँच गया, जहाँ महात्मा रहते थे। चिल्लाकर बोला, "हमारे मृग कहाँ हैं ?"

महात्मा ने दृष्टि उठाकर राजकुमार की ओर देखा और बड़े शान्त भाव से उत्तर दिया, "यहीं हैं। यहीं के हैं वे। यह 'अयोध्या वन' है।"

राजकुमार ने बीच ही में टोका, "जानता हूँ।"

"तब तो यह भी जानते होंगे कि इस वन में किसी जीव की

हत्या करना मना है।"

"जानता हूँ।"

"फिर ?"

प्रवीर एक क्षण झिझका। फिर उसी तेजी से बोला, "महात्मा जी! मैं आपसे ज्ञान लेने नहीं आया, उन मृगों का पता पूछने आया हूँ !"

महात्मा ने एक बार फिर राजकुमार की ओर देखा। फिर मुँह फेर लिया। बोले एक शब्द नहीं।

प्रवीर और भी जल उठा, चीखा, "आप बताते हैं या नहीं ?"

महात्मा नहीं बोले।

"मैं कहता हूँ यदि आपने उनका पता नहीं बताया, तो मैं आपका सिर काट डालूँगा।"

महात्मा जी बिना बोले उसी शान्ति से अपना काम करते रहे। वे जितने शान्त थे, प्रवीर उतना ही अशान्त था। उसका क्रोध सीमा पार कर चुका था। राजमद की तरह क्रोध भी तो अन्धा होता है। इसलिए जब बार-बार पूछने पर भी महात्मा मौन रहे, तो वह सचमुच होश खो बैठा। उसने तलवार खींच ली, दूसरे ही क्षण महात्मा का सिर कटकर धरती पर लोटने लगा।

जैसे बादल गरजे, बिजली कड़की, जो देख रहे थे उनके दिल काँप-काँप उठे फिर इस कान से उस कान, इस घर से उस घर होती यह खबर महाराज के पास पहुँची। वे सहम उठे। लाज और शरम से उनका सिर झुक गया। शोक और शंकाओं ने उन्हें घेर लिया—'यह क्या किया प्रवीर ने ? महात्मा जी बिलकुल ठीक थे। प्रवीर गलत था। गलत होने पर भी उसने महात्मा को मार डाला, एक साथ दो-दो अपराध किए उसने...। ओह भगवान ! मैं क्या करूँ अब ?'

बहुत देर तक सोचते रहे, सोचते रहे। फिर एकदम उठे और प्रवीर की माँ के पास पहुँचे। उनका नाम था पंचम कुँवरि। प्रवीर उन्हीं का इकलौता बेटा था। उन्होंने जब महाराज को देखा तो आगे बढ़कर उनका

स्वागत किया। महाराज ऊपर से शान्त थे पर अन्दर तो बैचैनी बढ़ती जा रही थी। कुछ क्षण इधर-उधर की बातें करके एकाएक बोले, "रानी जी, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगी तुम ?"

रानी ने अचरज से महाराज को देखा, कहा, "अवश्य दूँगी, महाराज, पूछिए।"

महाराज ने पूछा, "अगर कोई बिना किसी अपराध के किसी महात्मा को मार डाले तो उसके साथ कैसा सलूक करना चाहिए।"

रानी एक क्षण के लिए भी नहीं झिझकी। बोलीं, "उसे प्राणदंड देना चाहिए, महाराज।"

"और अगर वह व्यक्ति राजकुल का हो तो ?"

"न्याय के सामने राजा और प्रजा दोनों बराबर होते हैं, महाराज !"

महाराज वीरसिंह को जैसे राह दिखाई दे गई। वे वहाँ से लौटे तो मंत्री को बुला भेजा, आदेश दिया, "प्रवीर को इसी क्षण बन्दी बनाकर जेल में बन्द कर दो।"

मन्त्री एक बार तो चौंका, पर कहानी वह भी सुन चुका था। उसने महाराज को समझाने की कोशिश की, पर बेकार। महाराज का अन्तिम आदेश था, 'प्रवीर को तुरन्त जेल में बन्द कर दिया जाए।"

यही हुआ भी। सारे नगर में जैसे एक तूफान आ गया। महाराज के भीतर भी तूफान मच रहा था। सारी रात वे सो नहीं सके, "आखिर प्रवीर उनका बेटा ही तो था—उनका अपना बेटा। पर हो बेटा, उसने अपराध तो किया ही है। उसे दंड मिलना ही चाहिए। जो अपराध करता है, वही तो दंड पाने का अधिकारी होता है।"

सवेरा हुआ। महाराज ने सदा की तरह पूजा-पाठ किया। सदा की तरह दरबार में पहुँचे, पर दरबार सदा की तरह शान्त नहीं था। सबके मन अशान्त थे। सबके चेहरों पर गम्भीरता थी, सोच रहे थे, 'क्या हो रहा है यह ? क्या होगा इसका परिणाम...'

तभी महाराज ने आदेश दिया, "प्रवीर को दरबार में लाया जाए।"

प्रवीर आया। पिता-पुत्र की आँखें मिलीं। दोनों ने एक दूसरे को परखा। एक न्याय के आसन पर था, दूसरा कठघरे में। महाराज ने तुरन्त संभलकर पूछा, "प्रवीर, तुम पर आरोप है कि तुमने 'अयोध्या वन' के महात्मा की हत्या की है। क्या यह सच है ?"

"जी हाँ, हत्या मैंने की है।"

"क्यों की ?"

"क्योंकि उनके कुंज में मेरा मृगों का झुंड था। वह बता नहीं रहे थे।"

"क्या तुम नहीं जानते कि 'अयोध्या वन' में किसी प्राणी का वध नहीं किया जा सकता ?"

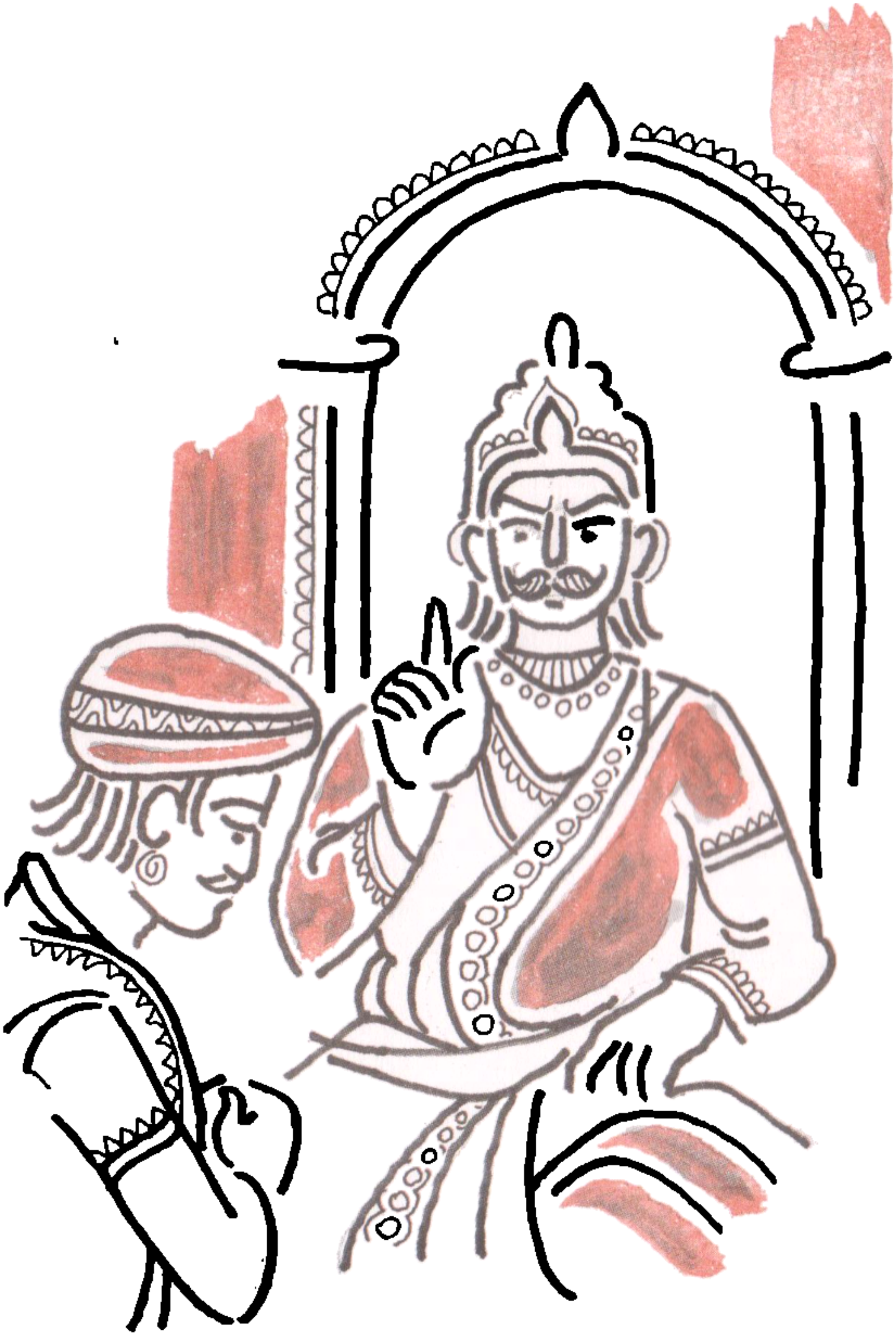
"जानता हूँ।"

"तो फिर तुमने वहाँ जाने का साहस कैसे किया ?"

प्रवीर ने एक बार फिर महाराज की ओर देखा। उस क्षण वे पिता नहीं थे, न्याय के आसन पर बैठे न्यायाधीश थे। उनके मुख पर एक अनोखी दृढ़ता थी। प्रवीर ने सिर झुका लिया। सारे दरबार में एक गहरी चुप्पी छा गई। कई क्षण कोई नहीं बोला। प्रवीर सिर झुकाए खड़ा रहा। महाराज तेजी से चारों ओर देखते रहे जैसे सारा संसार ही मौन हो गया हो। मौन कभी-कभी बड़ा भयानक होता है।

आखिर महाराज ने चुप्पी तोड़ी। बड़े शान्त गम्भीर स्वर में वे बोले, "प्रवीर के मौन रहने का मतलब है कि वह अपना अपराध मानता है। उसने एक निरपराध व्यक्ति की हत्या की है। उसने राजा की आज्ञा को भंग किया है। न्याय की दृष्टि में हम उसे अपराधी मानते हैं और आदेश देते हैं कि प्रवीरराय ने जिस तलवार से उन महात्मा का सिर काटा है, उसी तलवार से सबके सामने इसका सिर भी काट डाला जाए !"

पूरे दरबार में 'आह' का स्वर गूँजा। एक साथ सभी की भरभराई आँखें महाराज की ओर उठीं, पर वे तो जा चुके थे। अब उनसे कोई



नहीं मिल सकता था। प्रवीर उसी तरह सिर झुकाए जेल की ओर लौट रहा था और इतिहास एक बार फिर गर्व से सिर उठाकर चारों ओर देख रहा था।

फूलबाग की सिंह पौर के मैदान में, जहाँ राजकुमार का सिर काटा गया था, आज भी दो वायु-यंत्र अपनी बाँहें उठाए खड़े हैं, मानो घोषणा कर रहे हों—न्याय के सामने सब समान हैं !

इन वायु यंत्रों को आज हम सावन-भादों के नाम से जानते हैं।

# एक अनोखा दूत

किसी देश में एक राजा राज करता था। उसके राज्य में बड़ी-बड़ी दलदलें थीं। उनको पार करना नामुमकिन था। घूमकर जाना पड़ता था और इसमें बहुत समय लगता था। इसी सड़क के किनारे एक गरीब बूढ़ा रहता था। उसके तीन बेटे थे। जगदेव, हरदेव और श्याम। बूढ़े आदमी ने मन-ही-मन यह निश्चय किया कि वह इन दलदलों को पाट देगा और एक ऐसी सड़क बना देगा, जिस पर लोग आसानी से चल सकें। जिस रास्ते को पार करने के लिए आज तीन साल लगते हैं, तब कुल तीन हफ्ते लगेंगे। घोड़े पर तो वह रास्ता तीन दिन में ही तय कर लिया जा सकेगा।

और उसने ऐसा ही किया। अपने तीनों बेटों के साथ मिलकर कुछ दिन बाद उसने दलदलों को भर दिया, सड़कें बना दी, नालों पर पुल भी बना दिए। एक दिन जब वह घर लौटा, तो उसने अपने बड़े लड़के जगदेव से कहा, मेरे प्यारे बच्चे, जाओ, पुल के नीचे बैठ जाओ और लोग क्या कहते हैं वह सुनो।"

जगदेव तुरन्त पुल के नीचे जा बैठा। थोड़ी देर बाद दो साधु पुल के ऊपर आए। उनमें से एक ने दूसरे से कहा, "जिस व्यक्ति ने यह पुल बनाया है, यह सीधी सड़क बनाई है, वह भगवान से जो कुछ भी माँगेगा, मिलेगा।"

जगदेव ने जैसे ही ये शब्द सुने, तो वह बाहर निकल आया और बोला, "यह पुल मैंने अपने पिता और भाइयों के साथ मिलकर बनाया है।"

साधु बोले, "तुम भगवान से क्या माँगना चाहते हो ?"

जगदेव ने कहा, "मैं धनवान बनना चाहता हूँ।"

साधु बोले, "बहुत अच्छा। खेत में जाओ। वहाँ एक बरगद का पेड़ है। उस पेड़ के नीचे एक गहरा खजाना है। उसमें सोना, चाँदी, मणि-मुक्ता, सब कुछ हैं। उसे खोदो, भगवान तुमको धनी बना देंगे।"

जगदेव ने ऐसा ही किया और उसे सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, सभी कुछ मिले। उन्हें लेकर वह घर पहुँचा, तो उसके पिता ने पूछा, "क्या तुमने किसी को पुल पर चलते देखा ?"

जगदेव ने सब कहानी कह सुनाई और वह धन भी दिखाया, जो उसे मिला था। दूसरे दिन उस बूढ़े आदमी ने अपने दूसरे बेटे हरदेव से भी वही कुछ कहा, जो जगदेव से कहा था। वह भी तुरन्त पुल के नीचे जा बैठा। उसी तरह साधु आए। उसी तरह उन्होंने कहा, "जिसने यह पुल बनाया है, वह भगवान से जो भी मागेगा, मिलेगा।" हरदेव ने कहा, "मैं चाहता हूँ, भगवान मुझे जीवन भर खाने को रोटी देते रहें।"

साधु बोले, "बहुत अच्छा। घर जाओ और नई जमीन लेकर उसमें अनाज बोओ। भगवान तुम्हें जिन्दगी भर रोटी देंगे।"

उसने ऐसा ही किया और घर लौटकर पिता जी को सारी कहानी सुनाई। तीसरे दिन उस बूढ़े ने अपने सबसे छोटे लड़के श्याम से भी वही कहा जो दोनों बड़े लड़कों से कहा था। वह भी पुल के नीचे जाकर बैठ गया। उसने भी साधुओं को बातें करते सुना और जब साधुओं ने उससे पूछा कि तुम भगवान से क्या चाहते हो, तो उसने उत्तर दिया, "मैं महाराज का सैनिक बनना चाहता हूँ।"

साधु बोले, "कुछ और माँगो। सैनिक का काम बड़ा कसाले का होता है। अगर तुम सैनिक बन गए, तो समुद्र का राजा तुम्हें बन्दी बना लेगा। तुम पछताओगे।"

पर श्याम अपनी बात पर अड़ा रहा।

साधु बोले, "तुम राजा की सेवा करना चाहते हो ? अच्छी बात है। हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं।"

यह कहकर उन्होंने श्याम के सिर पर तीन बार हाथ रखा और उसे पहली बार बारहसिंगा, फिर खरगोश और बाद में सुनहली चिड़िया बना दिया और अन्त में उसे मनुष्य बनाकर बोले, "अब तुम राजा की सेना में भरती हो सकते हो। यदि तुम्हें कहीं जल्दी जाना पड़े, तो तुम बारहसिंगा, खरगोश और चिड़िया जो चाहो बन सकते हो।"

श्याम घर लौट आया और उसने अपने पिता से कहा, "मुझे राजा की सेना में भरती होने की आज्ञा दो।"

पिता पहले तो हिचका, लेकिन फिर आज्ञा दे दी।

श्याम राजा के पास पहुँचा। ऐसे हृष्ट-पुष्ट नौजवान को राजा ने अपना शरीर रक्षक नियुक्त कर दिया।

दिन बीतते गए। अचानक एक दूसरे राजा ने इस देश पर चढ़ाई कर दी। राजा अपनी सेना लेकर उससे लड़ने को चल पड़ा। श्याम भी साथ में था। काफी दूर चलने के बाद राजा को याद आया कि वह न तो अपनी विशेष गदा लाया है, न तलवार। अब वह युद्ध कैसे करेगा ? उसने सभी सैनिकों से कहा कि क्या कोई व्यक्ति जल्दी से जाकर ये दोनों चीजें ला सकता है ? जो यह काम करेगा उससे मैं राजकुमारी की शादी कर दूँगा और अपना आधा राज्य दे दूँगा।

बहुत से सैनिक आगे आए। किसी ने कहा—इस काम में तीन महीने लगेंगे, किसी ने कहा—तीन हफ्ते लगेंगे। किसी ने एक पखवाड़ा बताया। लेकिन श्याम बोला, "मैं यह यह काम तीन दिन में कर सकता हूँ।"

राजा बहुत खुश हुआ। उसने राजकुमारी के नाम एक चिट्ठी लिखी। उसको लेकर श्याम राजधानी की ओर चल पड़ा। एक कोस चलने के बाद उसने बारहसिंगे का रूप धारण किया और तीर की तरह दौड़ने लगा। जब थक गया, तो खरगोश बन गया। जब खरगोश भी

थक गया, तो वह सुनहरे सिर वाली चिड़िया बन गया। अब वह खूब तेजी से उड़ सकता था। उड़ते-उड़ते वह राजकुमारी के महल के पास पहुँच गया। यहाँ आकर उसने मनुष्य का रूप धारण कर लिया और अन्दर जाकर राजा की चिट्ठी राजकुमारी को दी। पढ़कर राजकुमारी चकित रह गई। बोली, "तुम इतनी जल्दी कैसे आ गए ?"

श्याम ने तुरन्त बारहसिंगा, खरगोश और चिड़िया का रूप धारण किया और बताया, "मैं इस तरह रूप बदलकर आया हूँ।"

जिस समय वह बारहसिंगा बना, राजकुमारी ने उनके सिर के कुछ बाल काट लिये। जब वह खरगोश बना, तो राजकुमारी ने उसके शरीर पर से भी कुछ बाल काट लिये। जब उसने चिड़िया का रूप धारण किया, तो राजकुमारी ने उसका एक पंख निकाल लिया। फिर उसको खाने-पीने को दिया। राजा की गदा और तलवार भी दी। श्याम ने राजकुमारी को नमस्कार किया और पहले की तरह कुछ दूर बारह-सिंगा बनकर दौड़ा, कुछ दूर खरगोश बनकर दौड़ा। फिर चिड़िया बनकर उड़ा। और राजा की छावनी के पास पहुँच गया। वह बहुत थक गया था। यहाँ आकर वह थोड़ी देर के लिए लेट गया और फिर सो गया। तब एक सेनापति उधर से गुजरा और उसे देखा। राजा की गदा और तलवार को भी देखा। बस उसने श्याम को समुद्र में धकेल दिया और गदा तथा तलवार लेकर राजा के पास पहुँच गया। बोला, "आपका वह श्याम तो बहुत झूठा था। उसका तो कुछ पता ही नहीं। लगता है रास्ते में ही कहीं भटक गया है। देखिए, मैं जाकर ये चीजें ले आया हूँ।"

राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सेनापति को धन्यवाद दिया। और फिर लड़ाई में शत्रु को बुरी तरह हरा दिया।

उधर श्याम जैसे ही समुद्र में गिरा, तो वहाँ के राजा ने उसे पकड़ लिया और नीचे अपने महल में ले गया। एक साल तक वह वहाँ रहा। वह बहुत उदास रहता था और रोता था।

समुद्र का राजा श्याम को रात के समय किनारे पर ले जाता था और सूरज निकलने से पहले लौटा लाता था। इसी तरह दो बरस बीत गए। श्याम को छुटकारे का कोई उपाय नजर नहीं आता था, इसलिए वह बहुत उदास रहता था।

इसी तरह तीसरा साल भी बीत गया। वह उसी तरह रोता रहा। समुद्र के राजा ने एक बार फिर उसे किनारे पर भेज दिया। लेकिन इस बार ऐसा हुआ कि राजा के वापस आने से पहले ही सूरज निकल आया। अब राजा उसको नहीं ले जा सकता था।

बस श्याम उसकी कैद से छूट गया और राजधानी की ओर चल पड़ा। कुछ दूर वह बारहसिंगा बनकर चला। कुछ दूर खरगोश बनकर, फिर चिड़िया बनकर चला और अन्त में वह महल के पास पहुँच गया। पूरे तीन साल बीत चुके थे। राजा ने राजकुमारी की शादी उस सेनापति से करने की आज्ञा दे दी थी। जिस समय श्याम वहाँ पहुँचा राजकुमारी वधू के भेष में बैठी हुई थी। सेनापति भी पास बैठा था। राजकुमारी ने श्याम को देखा, तो तुरन्त चिल्ला पड़ी, ''पिता जी, महाराज, मेरी बात सुनिए। मेरा दूल्हा आपका यह सेनापति नहीं है। वह श्याम है, जो आपकी गदा और तलवार ले गया था।''

फिर उसने श्याम से कहा, ''श्याम, महाराज को दिखाओ कि वह सब तुमने कैसे किया था ?''

श्याम तुरन्त बारहसिंगा बन गया। राजकुमारी ने अपना रूमाल खोला और वह बाल दिखाए, जो उसने काट लिये थे। फिर वह खरगोश बना, तो फिर उसने बाल दिखाए। वह चिड़िया बना, तो उसने पर दिखाया। और कहा, ''महाराज, क्या आप सन्तुष्ट हैं ?''

महाराज समझ गए कि सचाई क्या है। सेनापति ने भी अपना अपराध स्वीकार कर लिया। राजा ने उसे मौत की सजा दी और राजकुमारी की शादी श्याम से कर दी।

# एक थी रूही

सोना और दीनू अपनी चाची के साथ एक गन्दी बस्ती में रहते थे। उनके पास न पहनने को कपड़े थे, न खाने को रोटी। नंगे पैर दिन भर आवारा बच्चों की तरह घूमते रहते थे। धीरे-धीरे चाची ने घर का सब कुछ बेच दिया। बस एक तवा और एक बाल्टी ही रह गई। हाँ, उनके पास एक बिल्ली भी थी। नाम था उसका रूही। वह बहुत सुन्दर थी। उसकी पीली-पीली आँखें रोशनी में ऐसी चमकतीं जैसे अँधेरी रात में आकाश के तारे। बच्चे उसे बहुत प्यार करते थे। लेकिन वह कब तक उनके पास रह सकती थी। उनके घर में उसके लिए अब एक भी चूहा नहीं बचा था।

एक दिन चाची ने दोनों बच्चों से कहा, ''आज बस ज़रा-सा दूध बचा है। आओ, इसे ही बाँटकर पी लें। कल मैं तवा और बाल्टी भी बेच दूँगी। उसके बाद कुछ नहीं रहेगा, और हम भूखे मर जाएँगे।''

उसने दूध के तीन हिस्से किए। लेकिन रूही भी तो थी। सोना उसको बहुत प्यार करती थी। इसलिए उसने अपने हिस्से में से आधा दूध उसे पिला दिया।

दूध पीकर रूही बाहर चली गई। थोड़ी देर बाद जब वह वापस आई तो बच्चों ने देखा कि उसके मुँह में कुछ है। उस 'कुछ' को उसने सोना के सामने लाकर रख दिया। चाची ने देखा तो चिल्ला पड़ी, ''अरे यह तो मछली है। अहा आखिर हमारा भाग्य जाग ही गया। इसको

काटकर तवे पर रखो। मैं अभी पानी लेकर आती हूँ।"

दीनू ने जैसे ही उसे काटने के लिए छुरी उठाई कि उसके कान में किसी ने बहुत धीरे से कहा, "नहीं-नहीं, मुझे बीच में से मत काटना, बस मेरी जरा-सी पूँछ काट दो।"

दीनू पहले तो बहुत डरा लेकिन फिर उसने वैसा ही किया जैसा उसे करने के लिए कहा गया था और यह क्या—उसकी पूँछ को काटते ही वह मछली दो हिस्सों में फट गई। फिर उसके अन्दर से एक छोटी-सी भूरे रंग की परी बाहर निकल आई। उसका शरीर गोल मटोल था। उसके कान भी चूहे की तरह गोल थे। उसने बड़े ही मीठे स्वर में कहा, "आप लोगों ने मुझे बीच में से नहीं काटा, काटते तो मैं मर जाती। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। मैं रूही को भी धन्यवाद देती हूँ कि उसने मुझे कूड़े से निकाला।"

यह कहकर उस परी ने बारी-बारी से झुककर उन सबको नमस्कार किया। तभी चाची पानी लेकर अन्दर आ गई। परी को देखकर पहले तो वह हक्का-बक्का रह गई। फिर बोली, "हे भगवान, मैं यह क्या देख रही हूँ। यह तो एक परी है।"

परी ने कहा, "मैं आपके लिए बहुत कुछ नहीं कर सकती। मेरी माँ बहुत कुछ कर सकती है। वह परियों की रानी है। मैं तो बस आपकी एक इच्छा पूरी कर सकती हूँ शर्त यह है कि वह बहुत मुश्किल न हो और छोटी-सी हो।"

दीनू एकदम बोला, "क्या तुम मेरे लिए अच्छा-सा भोजन मँगवा सकती हो । गरम-गरम पूड़ियाँ, हलवा, खीर और..."

सोना ने नम्रता से कहा, "और कुछ नए कपड़े भी। मेरे लिए लाल रेशम का फ्राक और दीनू के लिए..."

चाची चिल्ला उठी, "तुम लोगों ने क्या बकबक लगा रखी है। मुझे बहुत सा धन चाहिए। ढेर सारा धन। उससे मैं एक अच्छा सा मकान खरीदूँगी, फिर कपड़े और खाना खरीदूँगी..."

परी एकाएक गुस्से से भर उठी, बोली, "वाहजी आप तो बड़े लालची हैं। मैं केवल एक छोटी सी इच्छा पूरी कर सकती हूँ। जिस प्यारी रूही ने मुझे बचाया है, उसने तो अभी तक कुछ कहा ही नहीं। यह बूढ़ी औरत जिसने कुछ किया ही नहीं, ज्यादा चिल्ला रही है। तुम बोलो प्यारी रूही।"

चाची गुस्से से भन्ना उठी, "हूँ, रूही बोलेगी, एक बिल्ली। क्या बकवास है।"

रूही बोली, "म्याऊँ।"

परी ने कहा, "यह कहती है मुझे एक चूहा चाहिए। हुई न समझदारी की बात। मैं इसकी यह छोटी सी इच्छा जरूर पूरी करूँगी।"

उसके इतना कहते ही फर्श पर एक चूहा दौड़ने लगा। रूही उसकी ओर झपटी लेकिन उसने उस चूहे को मुँह में नहीं पकड़ा। बहुत नीचे झुककर उसे नमस्कार किया। उसके झुकते ही वह चूहा तुरन्त पिछले पैरों पर खड़ा हो गया। फिर ऊँचा और ऊँचा उठने लगा। जितना ऊँचा उठता उतना ही चमकता। सबने बार-बार आँखें मलीं। देखा—वह चूहा नहीं है। वह तो परियों की रानी है।

उसे देखकर वह छोटी सी भूरी परी चिल्ला उठी, "मेरी रानी माँ तुम आ गईं।"

रानी ने कहा, "हाँ, मैं आ गई हूँ। मैं इस प्यारी रूही को और इसके दोस्तों को इनाम देने आई हूँ क्योंकि इन्होंने तुम्हारी जान बचाई है।"

उसका यह कहना था कि वह टूटी-फूटी झोंपड़ी एक सुन्दर राजमहल में बदल गई। उनके फटे-पुराने कपड़े गायब हो गए। सोना ने देखा कि उसके शरीर पर लाल रेशम का फ्राक है। दीनू ने भी बढ़िया-बढ़िया नए कपड़े पहन रखे हैं। चाची के कपड़े तो मखमल के हैं। मेज पर वह सब खाना रखा है जिसके लिए दीनू ने कहा था। रूही पीली मखमल की गद्दी पर बैठी है। उसके सामने प्लेट में बढ़िया



मछली है और एक गिलास में मलाई भरी हुई है।

सोना खुशी से चिल्ला उठी, ''यह सब रूही के कारण हुआ है। अगर वह मछली को खा जाती तो हमें कुछ भी नहीं मिलता।''

रानी बोली, ''तुमने रूही को अपने हिस्से का दूध दिया था। तुम बहुत अच्छी हो। जो किसी की सहायता करता है उसकी सब इच्छाएं पूरी हो जाती हैं।''

यह कहकर रानी अपनी बेटी को लेकर वहाँ से चली गई और उसके बाद वे सब लोग सुख से रहने लगे। ज़रूरत पड़ने पर किसी की सहायता करने से वह अब भी पीछे नहीं हटते।

# चतुर बंकू

बंकू बाबू घर से निकले ही थे कि नीले मकान वाली दादी अम्मा से भेंट हो गई। उनकी बातें बंकू को बहुत अच्छी लगती थीं। उन्हें देखते ही वह कुछ-न-कुछ किस्सा ले बैठता और फिर देर तक दादी अम्मा का भाषण सुनता और हँसता। उस दिन न जाने क्या हुआ, बंकू को देखते ही दादी-अम्मा दौड़ी-दौड़ी उसके पास आई, बोली, अच्छा बंकू बेटा ! बता तो कल मेरे घर के चौक में गेंद किसने फेंकी थी ? (नाश हो जाए उसका) मेरा घड़ा ही फोड़ डाला। सारे चौक में पानी-ही-पानी हो गया।

बंकू बाबू ने धीरे से पास जाकर कहा, "दादी अम्मा ! किसी से कहना नहीं, वह हरे मकान वाला केशव है न, वह छत पर रोज फुटबाल खेलता है। मैंने उससे कई बार कहा पर वह मानता ही नहीं। कहता है छत मेरी है, फुटबाल मेरी है। मैं जो चाहे करूँगा। जहाँ चाहे खेलूँगा।"

दादी अम्मा गुस्से से काँपने लगी, "बोली, अच्छा रे उसकी इतनी हिम्मत। अभी जाती हूँ उसकी माँ के पास। सारी छत गोबर से न भर दी तो कहना। मैं भी कहूँ आखिर इतनी हिम्मत है किसमें। देखती हूँ इस हरे मकान के केशव को...।"

और दादी अम्मा बकती-झकती तेज-तेज कदम रखती चल दी हरे मकान की तरफ, और बंकू बाबू मन-ही-मन मुस्कराते चले केशव को ढूँढ़ने स्कूल के खेल के मैदान में। केशव को खेलने का बहुत शौक

था। फुटबाल की टीम का तो वह कप्तान था। वह उस दिन मैदान में मैच की तैयारी कर रहा था। बंकू ने उसे पास बुलाकर हँसते-हँसते कहा, "जानता है नीले मकान वाली दादी अम्मा क्या कहती थी ?"

"मैं तो नहीं जानता। क्या उसे पता लग गया कि उसके चौक में गेंद फेंककर घड़ा फोड़ने वाला में हूँ।" केशव ने कहा।

बंकू बोला, "हाँ, पता लग गया तभी तो वह तुम्हारी माँ से लड़ने गई है। गालियाँ दे रही थी। कहती थी सारी छत गोबर से भर दूँगी। देखूँगी कोई कैसे खेलता है फुटबाल।"

"सच ?" केशव ने पूछा।

"हाँ-हाँ, मैं अपनी आँखों से देखकर और कानों से सुनकर आ रहा हूँ।" बंकू बाबू ने छाती फुलाकर कहा।

केशव बेचारा डर गया। वह जानता था कि माँ जरूर नाराज होगी। पापा को पता लग गया तो पिटाई भी हो सकती है, लेकिन उसे यह पता नहीं लगा कि दादी अम्मा को उसका नाम किसने बताया। बंकू, चेतन और गुरदीप ये तीन ही तो वहाँ थे। बंकू बाबू ने तो नहीं कहा होगा। फुटबाल की प्रैक्टिस छत पर की जा सकती है यह सलाह तो उसी ने दी थी, तब तो जरूर चेतन या गुरदीप ने कहा है। अभी देखता हूँ उन दोनों को।

केशव उन दोनों की तलाश में चल पड़ा। बंकू बाबू फिर मुस्कराए और आगे बढ़ गए। सामने से आ रहा था कुल्फी वाला। बस मुँह में पानी भर आया, पर जेब में आज इतने पैसे नहीं थे कि बढ़िया कुल्फी खा सके। फिर क्या लौट जाए ? ना, ना कुल्फी तो खानी ही होगी। तब क्या किया जाए ?...

उसने एक क्षण सोचने का नाटक किया। फिर हँसते-हँसते रामू कुल्फी वाले के पास पहुँचा। बोला, "राम-राम, रामू काका। कैसे हो ?"

काका ने बंकू बाबू को देखा, मुस्कराए, बोले, "अच्छा बंकू है। अच्छा हूँ बेटे, बहुत अच्छा हूँ।"

बंकू ने कहा, "अच्छे तो होंगे ही। कुल्फी भी तो तुम बहुत अच्छी बनाते हो। बढ़िया मलाई वाली। एक बार खा लें तो कभी न भूलें। लेकिन कुछ बच्चे हैं कि उन्हें कुछ भी पसन्द नहीं आता कहते थे ये रामू काका दूध की नहीं, पानी की रद्दी कुल्फी बनाता है। मिलावट करता है। ठग है ठग।"

रामू काका को यह सुनकर गुस्सा आ गया सामने होते तो सर फोड़ देते बोले, "कौन हैं वे लड़के ?"

बंकू ने उसी शान्त भाव से कहा, "काका, मेरा नाम न लेना। छठी क्लास के भूषण, रज्जन, असद, मौना, सोना सभी कहते हैं।"

रामू काका बोले, "कल मेरे सामने तो तारीफ के पुल बाँध रहे थे कुल्फी खाकर उँगलियाँ चाट रहे थे। मुँह पर कुछ, पीठ पीछे कुछ। देखूँगा इन्हें। एक-एक को वह मजा चखाऊँगा कि वे भी क्या याद रखेंगे।"

बंकू बाबू ने उसी तरह शान्त बने रहकर कहा, "जरूर चखाना। पर मेरा नाम न लेना। अच्छा एक कुल्फी तो दो। तुम्हारी कुल्फी की तो गन्ध सूँघकर ही भागा आता हूँ।"

"हाँ-हाँ, लो आज बड़ी कुल्फी लो। देखो खाकर रबड़ी है रबड़ी।"

यह कहते हुए उसने 60 पैसे वाली कुल्फी खोलकर पत्ते पर रखी और उसे दे दी। बंकू बाबू खाते रहे और तारीफ के पुल बाँधते रहे। फिर मुस्कराते हुए आगे बढ़ गए। कुछ देर बाद रज्जन, भूषण, मोना, और सोना वहाँ आए। उनके साथ आठवीं कक्षा की विनीता भी थी। वह भूषण की बड़ी बहन थी। उन्हें देखकर रामू काका ने मुँह फुला लिया रज्जन ने कहा, "काका, लाओ कुल्फी खिलाओ।"

रामू काका ने उत्तर दिया, "कुल्फी है पर तुम्हें नहीं दूँगा।"

रज्जन को बड़ा ताज्जुब हुआ, बोला, "नहीं दोगे। क्यों ? मैंने क्या कसूर किया है ?"

"कसूर," रामू काका ने कहा, "तुम छठी क्लास वाले मेरी बुराई

करते हो। पानी की कुल्फी है, रद्दी कुल्फी है, रामू काका मिलावट करता है, क्यों ? कभी कुल्फी खाई है? रबड़ी को पानी कहते हो। पानी है तो अब क्यों आए खाने?"

भूषण सब बातें सुन रहा था। बोल उठा, 'ये सब बातें हमने नहीं कही, बंकू ने कही है। अभी कुछ देर पहले की ही तो बात है।"

"हाँ-हाँ, बंकू ने यही कहा था," रज्जन भी बोल उठा, "क्यों मोना, क्यों सोना, नहीं कहा था ?"

"कहा था, कहा था।" मोना, सोना एक साथ बोल उठीं।

रामू काका ने सुना तो अचरज से आँखें फाड़े देखता रह गया। दो क्षण बाद बोला, "और वह अभी मेरे पास आकर कह रहा था कि ये सब बातें तुम कहते हो।"

उसे अब भी विश्वास नहीं आ रहा था। विनीता जो अब तक चुप खड़ी थी, बोल उठी, "रामू काका ये जो कहते हैं वह ठीक है। कल वह मुझसे भी कहता था, 'दीदी तुम कितनी सुन्दर तस्वीरें बनाती हाँ, पर रमा कहती है कि सब कूड़ा है। भला कोई इतनी सुन्दर तस्वीरों को कूड़ा कैसे कह सकता है। असल में वह जो बनाती है वही कूड़ा है।...."

सोना ने कहा, "दीदी, तुमसे यह कहा और मेरे सामने रमा से कह रहा था, विनीता दीदी की तस्वीरें कूड़ा हैं। तुम्हारी तस्वीरें सुन्दर हैं। दीदी तुम्हारी तस्वीरें देखकर जलती है।"

विनीता ने मुस्कराकर कहा, "मुझे मालूम है।"

लेकिन रामू काका को बड़ा क्रोध आया। उसने ऐलान किया कि वह बंकू को अब कभी पास नहीं आने देना। भूषण, रज्जन, सोना, मोना इन सबने भी कहा कि वे उससे कभी बात नहीं करेंगे। उसकी ओर देखेंगे भी नहीं।

इतना ही नहीं जब शाम को बंकू बाबू घर लौटे तो केशव उनकी राह देख रहा था। दादी अम्मा ने उसे खूब डाँटा था और उसे यह

भी बता दिया था कि बंकू ने ही उसका नाम उसे बताया है, इसलिए वह बंकू से लड़ने आया था। उसे देखते ही वह चिल्ला उठा, "हूँ, मुझसे कहते थे कि दादी अम्मा को चेतन और गुरदीप ने कहा है, लेकिन कहा तुमने है।"

"मैंने ?" बंकू ने कुछ सकपकाकर कहा।

"हाँ तूने। मुझे दादी अम्मा ने खुद बताया है। चल उनके पास। तू इतना झूठा और मक्कार है, चुगलखोर। मैं तुझे ठीक कर दूँगा। मैं अभी जाकर तेरी माँ से कहता हूँ।..."

बंकू अब सचमुच डर गया। माँ को पता लग गया तो खैर नहीं। उसने दौड़कर केशव का हाथ पकड़ लिया, कहा, "माँ से कुछ न कहना। मुझसे गलती हो गई। अब से ऐसा नहीं करूँगा। सच विद्या माई की कसम।"

कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू आ गए। केशव ने उसकी ओर देखा, फिर कहा, अच्छा आज नहीं कहूँगा, पर मेरी तेरी यारी कुट्टी। मैं तुझसे कभी नहीं बोलूँगा। कभी तेरे पास नहीं आऊँगा।

यह कहते-कहते वह तेजी से वहाँ से चला गया। बंकू बेहद डर गया था, पर उसके जाने के बाद वह फिर पहले की तरह मुस्कराया और अन्दर चला गया। लेकिन केशव को तो उसने रोक दिया दादी अम्मा को कैसे रोक सकता था ? उसने नमक मिर्च लगाकर सब बातें उसकी माँ से कह दीं। यही नहीं जब वह स्कूल गया तो केवल केशव ने ही नहीं बल्कि भूषण, रज्जन, मोना, सोना और दूसरे सभी साथियों ने उसकी ओर देखा तक नहीं। कोई उसके पास आया तक नहीं। उसने पुकारा तो किसी ने नहीं सुना। किसी के पास गया तो उसने साफ कह दिया, तुम गन्दे लड़के हो, झूठे हो।"

शायद बंकू ने यह सब नहीं सोचा था। वह अकेला पड़ गया। घर माँ ने काफी डाँटा-डपटा था। उसे रोना आ गया। वह चुपचाप बाग के कोने में एक पत्थर पर जा बैठा और टुकुर-टुकुर अपने हँसते-

खिलखिलाते साथियों को देखता रहा। उसने कुछ खाया भी नहीं। वह भला वहाँ जाने की हिम्मत कैसे कर सकता था ? कुछ देर बाद वह एकाएक रोने लगा। देखते-देखते उसकी हिचकियाँ तक बँध गईं। तभी उसे लगा कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा है। रोते-रोते मुड़कर देखा तो वह विनीता थी।

उसे देखकर वह और भी जोर से रो पड़ा। बोला, "दीदी, मुझे माफ कर दो, मैं बहुत बुरा लड़का हूँ।"

विनीता ने उसे प्यार से सहलाया, कहा, "एक काम करोगे बंकू ?"

बंकू बोला, "क्या दीदी ?"

दीदी ने कहा, "तुम सबसे जाकर माफी मांग लो।"

वह एकाएक घबरा गया। उसने एकदम जवाब नहीं दिया। पर वह अकेला कैसे रहेगा ? कोई भी उससे बात नहीं करेगा तो कैसे होगा ?... वह कई क्षण सोचता रहा। फिर उठ खड़ा हुआ। बोला, "चलो दीदी।"

वह सबके पास गया। सबसे माफी माँगी। दादी अम्मा से भी माफी माँगी। दादी अम्मा हँसकर बोली, "अच्छा बेटे, गलती सबसे होती है। तुमने गलती मान ली। तुम अच्छे बेटे हो गए। लेकिन हाँ, अब फुटबाल फेंककर मेरा घड़ा न फोड़ना।"

दादी अम्मा के पोपले मुँह से ये बातें सुनकर सब हँस पड़े लेकिन उस दिन से बंकू बाबू में एक बड़ा परिवर्तन आ गया है। वे सबसे मिलते हैं, हँसते-खेलते हैं, पर साथ रहते हैं विनीता दीदी के। सच तो यह है विनीता दीदी ही बंकू बाबू को अपने साथ रखती है। उसका यह ऐब जो छुड़ाना है।

# एक दिलेर और एक मावला शेर

उस दिन महाराज शिवाजी बहुत उदास थे। उनके सरदार भी उदास थे। बात ही ऐसी थी। दिल्ली के बादशाह की सेना ने उनके छिपने के स्थान को घेर लिया था। किले में कुल 700 सैनिक थे। बादशाह की सेना में 5000 से भी अधिक सिपाही थे। उनके सेनापति थे मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेरखाँ। दोनों बहादुर थे। जानते थे कि पहाड़ी किलों को कैसे जीता जा सकता है।

शिवाजी इन बातों से नहीं डरते थे। उन्हें इस बात की भी चिन्ता नहीं थी कि शत्रु के सैनिक इतने अधिक हैं। चिन्ता रसद की थी। वे पुरंदर के किले में थे। किला एक पहाड़ी के ऊपर बना हुआ था। बादशाह की सेना ने इसी पहाड़ी को चारों ओर से घेर लिया था। उस तक पहुँचने के सारे रास्ते रोक लिये थे।

पुरंदर का किला छिपने के लिए आखिरी किला था। वहाँ से बचकर निकलना भी असम्भव था। तब क्या करें ? किसी भी तरह हो, इसकी रक्षा होनी ही चाहिए। दिल्ली का बादशाह शिवाजी से बहुत परेशान था। उन्होंने बादशाह के कई किलों पर अधिकार कर लिया था। सूरत के बन्दरगाह तक को लूट लिया था, इसलिए वह शिवाजी को कैद कर लेना चाहता था। इसलिए उसने इतनी बड़ी सेना भेजी थी।

महाराज शिवाजी जानते थे कि वे मैदानों में बादशाह की सेना से लोहा नहीं ले सकते, पर अब तो पहाड़ी किला भी घिर गया था। यह गया तो सब-कुछ गया।

नहीं-नहीं, यह नहीं जाएगा। घेरा तोड़ना ही होगा। कैसे तोड़ना होगा ? यही तो अभी समझ में नहीं आ रहा है। तभी एक सैनिक ने आकर सूचना दी, "महाराज, बुरी खबर लाया हूँ। बज्रगढ़ पर दिलेरखाँ ने कब्जा कर लिया है। हमारे सैनिक बड़ी वीरता से लड़े पर...।"

महाराज ने बीच में टोककर कहा, "वह मैं जानता था। अपने सैनिकों की वीरता में मुझे सन्देह नहीं है। पर कैसे भी हो पुरंदर की रक्षा होनी ही चाहिए। वह आखिरी किला है। उसकी रक्षा हमारी रक्षा है। उसकी पराजय हभारी पराजय। वह गिरता है, तो मराठा शक्ति गिरती है।"

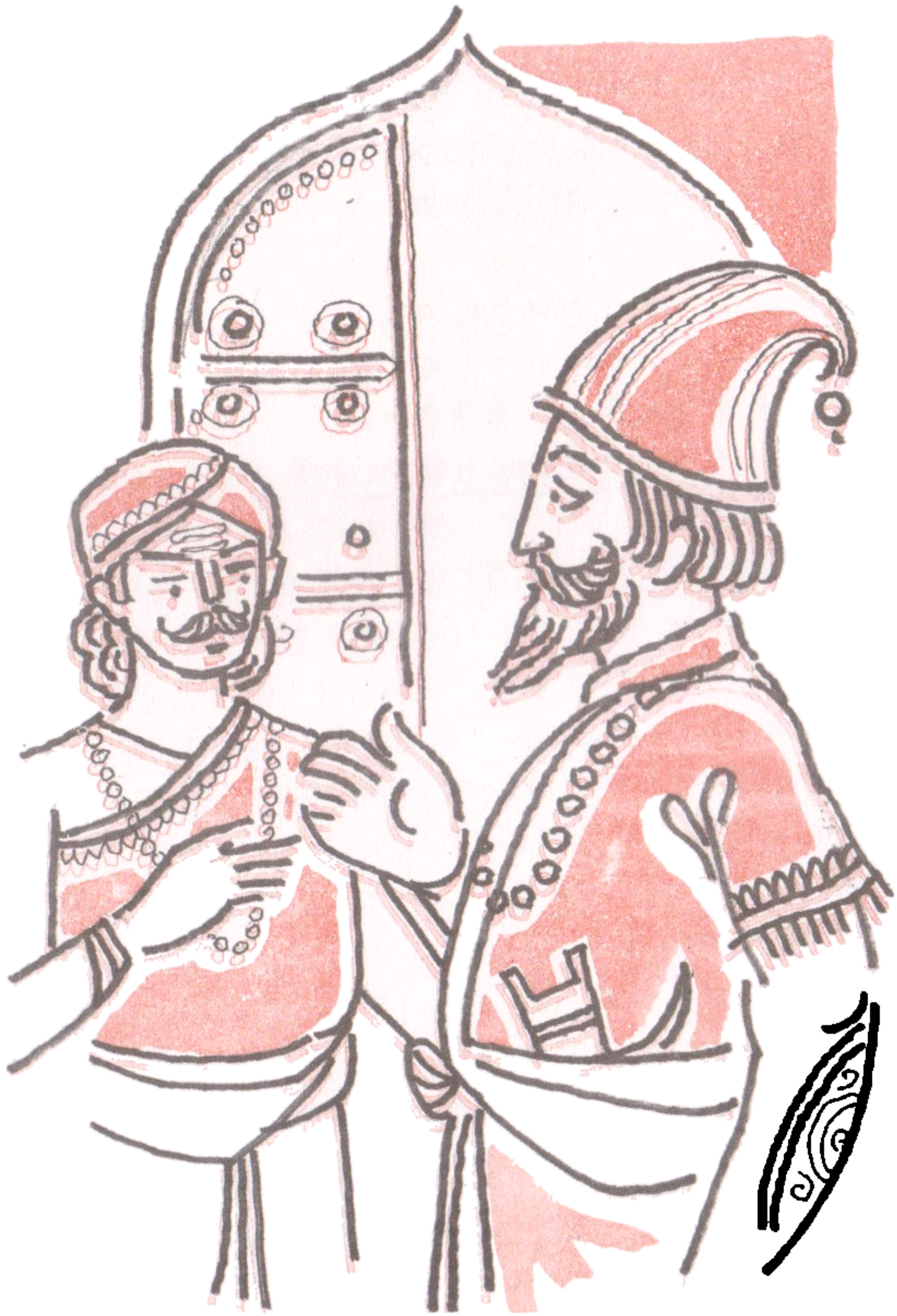
और उन्होंने सरदारों की ओर देखा। सबकी निगाहें नीची थीं। कोई आँखें मिलाने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था। महाराज तड़प उठे। आवेश में आकर उन्होंने कहा, "सभी कहते हैं कि पुरंदर की रक्षा करना असम्भव है। कोई यह नहीं कहता कि उसका हाथ से निकल जाना असम्भव है।"

अब भी कोई नहीं बोला। महाराज वैसे ही तड़पे, "तो कोई राह नहीं ? कोई उम्मीद नहीं ?"

उनका यह कहना था कि जैसे बादलों में बिजली तड़पती है, वैसे ही एक सरदार उठा और बोला, "राह है, उम्मीद भी है। मैं कहता हूँ, महाराज, कि पुरंदर का किला हमारे हाथ से नहीं निकल सकता। यह असम्भव है।"

महाराज शिवाजी ने उसकी ओर देखा। सभी सरदारों ने भी उसकी ओर देखा। उसका नाम बाजीप्रभू था—मुरार बाजीप्रभू। उसने उसी तरह फिर कहा, "महाराज, जब तक आपके एक भी सैनिक के शरीर में प्राण हैं, मराठा शक्ति कभी पराजित नहीं हो सकती।"

महाराज शिवाजी का चेहरा खिल उठा। वे बोले, "बाजीप्रभू, तुम्हारा साहस धन्य है। लेकिन क्या तुम जानते हो कि शत्रु की संख्या बहुत अधिक है ?"



बाजीप्रभू ने कहा, "महाराज अकेला एक शेर सैकड़ों मृगों को मारने के लिए काफी होता है।"

शिवाजी फिर बोले, "लेकिन वे पुरंदर के दरवाजे पर आ पहुँचे हैं।"

बाजीप्रभू ने वैसे ही कहा, "यह तो और भी अच्छा है, महाराज। हमें दुश्मन को ढूँढ़ने के लिए भटकना नहीं पड़ेगा। चिन्ता न कीजिए, हमारे 700 सैनिक दिलेरखाँ को बता देंगे कि युद्ध कैसे लड़ा जाता है।"

शिवाजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बाजीप्रभू को गले से लगा लिया। उसे एक तलवार दी और कहा, "मैं तुम्हें सेनापति बनाता हूँ। शिवा भवानी तुम्हारी रक्षा करेंगी।"

महाराज को प्रणाम करके बाजीप्रभू अपनी सेना में पहुँचा। उसके सैनिक भी उसी की तरह निडर और बहादुर थे। जानते थे कि देश के लिए कोई बलिदान बड़ा नहीं होता। पुरंदर का किला हाथ से निकल गया तो उन्हें तब भी मरना पड़ेगा। इसलिए किले का दरवाज़ा खुलते ही वे तेजी से पहाड़ों की ढलानों पर दौड़े और अचानक शत्रु पर टूट पड़े। बादशाह की सेना घबरा गई, वह ठीक समय से लड़ भी नहीं सकी। उसमें भगदड़ मच गई, लेकिन उनके सरदारों ने उन्हें सँभाला। वे फिर आगे बढ़े। यह देखकर बाजीप्रभू ने अपने सैनिकों को ललकारा, "वीर सैनिको, शाही सेना टिड्डी दल की तरह बढ़ती आ रही है। तुम उसे घास की तरह काटते चलो। देखो मत, बस काटते चलो।"

फिर घमासान युद्ध होने लगा। सब एक-दूसरे को मारने-काटने लगे। एक घुड़सवार दौड़ा, सेनापति, दिलेरखाँ के पास पहुँचा। हाँफते हुए उसने कहा, "हुजूर, मुट्ठी-भर मराठों ने तूफान मचा रखा है। वे बेखौफ आगे बढ़ रहे हैं। गाजर-मूली की तरह हमारी फौज को काट रहे हैं। उनका सरदार तो बला का बहादुर है। पता नहीं तूफान है या खुद शैतान।"

दिलेरखाँ बहादुर था। सुनकर वह हँस पड़ा। बोला, "वह शैतान नहीं, एक बहादुर सिपाही है और बहादुरों की तलाश में घूम रहा है। चलो, हम चलते हैं।"

दिलेरखाँ को बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। 'हर-हर महादेव' की आवाज उसके बहुत पास आ गई थी। वह हैरान रह गया। मन-ही-मन उसने कहा, 'अरे ये चन्द आदमी हज़ारों की भीड़ को कुचलते हुए यहाँ मेरे तंबू के सामने आ पहुँचे। ये सचमुच बहादुर हैं। इनकी तलवारों में धार है।'

तभी सचमुच हाथ में तलवार लिये बाजीप्रभू वहाँ आ पहुँचा। उसने चिल्लाकर कहा, "आओ दिलेरखाँ, मैं तुमसे दो-दो हाथ करना चाहता हूँ।"

दिलेरखाँ भी चीखा, बोला, "सिपाहियो, देखते क्या हो ! कर दो इसके टुकड़े-टुकड़े।"

बाजीप्रभू ने उत्तर दिया, "कौन किसके टुकड़े करता है, यह अभी देखा जाएगा। तुम अपने को बचाओ।"

सचमुच खून से रँगी हुई तलवार लेकर बाजीप्रभू उस पर टूट पड़ा। दिलेरखाँ ने वार बचाकर कहा, "बहादुर सरदार, हम बहादुरी की कद्र करते हैं। तुम अगर तलवार रख दो तो हम तुम्हारी जान बख्श देंगे।"

बाजीप्रभू ने तड़पकर उत्तर दिया, "एक बहादुर से उसकी तलवार नीचे रखने के लिए कहना उसका अपमान करना है। वह रणभूमि में अपनी जान हथेली पर लेकर आता है, उसे बख्शवाने नहीं।"

दिलेरखाँ ने फिर कहा, "बहादुर सरदार, तू मेरा कहना मान ले। मैं तुझे शाही सेना में बहुत ऊँचा पद दिलवा दूँगा।"

बाजीप्रभू मुस्कराए। बोले, "मातृभूमि की रक्षा करना सबसे ऊँचा पद है। आप बातों से नहीं तलवार से लड़ाई कीजिए।"

और उसने दिलेरखाँ पर आक्रमण कर दिया। अब तो दोनों बहादुर एक-दूसरे से गुँथ गए। सैनिक भी एक-दूसरे का रास्ता रोकने के लिए

अपनी पूरी ताकत लगा रहे थे। रणभूमि में एक तूफ़ान मचा हुआ था। चीख-पुकार इतनी थी कि कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। बड़ी तेज़ी से बादशाह के सिपाही गिर रहे थे, लेकिन उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि दस के गिरने पर फिर बीस आगे बढ़ आते थे। उधर बाजीप्रभू और उसके सिपाहियों की तलवारें भी उसी तरह चमक रही थीं। सौ शाही सैनिकों के बीच में दस मराठा सिपाही ऐसे बढ़ते थे, जैसे शेर हिरणों के झुंड में घुस आता है और वे इधर-उधर भागने लगते हैं। दिलेरखाँ समझ गया कि इनसे पार पाना बड़ा मुश्क़िल है, किसी तरह बाजीप्रभू को मारना चाहिए।

और उसने अपनी तीर-कमान निकाली। निशाना साधा। तीर सीधा बाजीप्रभू के सीने में लगा। मुँह से आह निकल गई, लेकिन वह घबराया नहीं। उसने चिल्लाकर कहा, "सैनिको, जब तक एक भी मावला वीर ज़िन्दा है, तब तक शाही सेना पुरंदर के किले में कदम नहीं रख सकती। याद रखो, हमने महाराज से यही प्रतिज्ञा की थी कि पुरंदर का किला हाथ से नहीं निकलेगा और वह नहीं निकलेगा।"

वे फिर आगे बढ़े। दिलेरखाँ ने एक बार फिर कमान पर तीर चढ़ाया। एक बार फिर सनसनाता हुआ तीर बाजीप्रभू की छाती में धँस गया। वह लड़खड़ाया और धरती पर गिर पड़ा। लेकिन गिरते-गिरते उसने आवाज़ दी, सैनिको, मैं जा रहा हूँ, लेकिन तुम अभी ज़िन्दा हो। तुमने महाराज से प्रतिज्ञा की थी। तुम्हें उसे पूरा करना है।"

अब उससे नहीं बोला गया। उसके प्राण शरीर से निकलकर स्वर्ग में चले गए। दिलेरखाँ पास आ गया था। उसने बाजीप्रभू की ओर देखा और आह भरकर कहा, "गया, एक बहादुर इस दुनिया से चला गया। वह सचमुच बहादुर था, लेकिन...।"

उसके आसपास यकायक शोर फिर बढ़ने लगा था। मुट्ठी-भर

मराठा सैनिक ज़रा भी तो नहीं रुके थे। उन्होंने अपने सेनापति की ओर देखा तक नहीं था। वे पागल होकर आगे बढ़ रहे थे। वे कहर बरपा रहे थे। वे कट-कटकर गिर रहे थे, पर पीछे नहीं मुड़ते थे। दिलेरखाँ उनका दुश्मन था, पर उनकी बहादुरी देखकर उसका दिल गद्‌गद हो उठा, लेकिन वह अपनी हार नहीं मान सकता था। उसने अपने सिपाहियों को ललकारा। लेकिन यह क्या, वे तो पहाड़ी ढलानों पर से होते हुए नीचे भाग रहे थे। चारों ओर 'हर-हर महादेव' की आवाज़ से पहाड़ियाँ गूँज रही थीं। यही सुनाई दे रहा था, "पुरंदर के किले पर दुश्मन का अधिकार नहीं होगा, नहीं होगा।"

और देखते-देखते दिलेरखाँ अकेला रह गया। नीचे उतर जाने के सिवा उसके सामने और कोई चारा नहीं था। पुरंदर का किला उसी तरह खड़ा था। शाही सेना अब वहाँ नहीं थी। बचे-खुचे मराठा वीर लौटकर अपने सेनापति के चारों ओर इकट्‌ठे हो गए थे। किले का दरवाज़ा फिर खुला। महाराज शिवाजी अपने बहादुर सेनापति के दर्शन करने आ रहे थे। मशालों की रोशनी के बीच उन्होंने उस वीर पुरुष को देखा। उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई थी। महाराज की तलवार अब भी उसके हाथ में थी। उसने शत्रुओं को आगे नहीं बढ़ने दिया था।

महाराज ने आँखों में आँसू और चेहरे पर मुस्कान लिये बाजीप्रभू की ओर देखा। फिर नीचे झुककर जैसे उसके कान में कहते हों, "सचमुच बाजीप्रभू, तुम वीर थे। तुम्हारी वीरता ने मराठा शक्ति को पराज़ित नहीं होने दिया। तुम्हारी जय हो !"

# जिन्न भाग गए

एक बार एक दर्जी और एक जुलाहा साथ-साथ यात्रा पर निकले। वह एक ऐसे देश की तलाश में थे, जहाँ के रहने वाले उन्हें अधिक मजदूरी दे सकें। उनके अपने कस्बे वाले बहुत कंजूस थे।

दो दिन तक चलते रहने के बाद भी उन्हें कोई शहर न मिला। बस जुलाहे की हिम्मत टूट गई। उसे घर की याद आने लगी। उसने डरते-डरते अपने साथी से कहा, "दोस्त, क्या कहूँ, रात मैंने सपने में अपने घरवालों को देखा। वे मेरी याद करके रो रहे थे। मैं वापस लौटना चाहता हूँ।"

दर्जी ने जवाब दिया, "ऐसी बात है तो तुम चले जाओ।"

जुलाहा चला गया। अब दर्जी अकेला रह गया। लेकिन उसने हिम्मत न हारी। एक हाथ में गज़ लिया और दूसरे में कैंची और वह पहले की तरह ही आगे बढ़ने लगा।

चलते-चलते वह एक भयंकर वन में पहुँचा। चारो ओर अँधेरा छा रहा था। पेड़ आकाश को छू रहे थे और डरावनी आवाजें उठ रही थीं। डर को दूर करने के लिए दर्जी पेड़ों को ज़ोर-ज़ोर से गज़ से पीटने लगा और कैंची को हवा में ऐसा घुमाने लगा जैसे तलवार हो।

कुछ दूर जाने पर उसकी नज़र एक सीढ़ी पर पड़ी। वह एक लम्बे पेड़ के सहारे लगी हुई थी। एक बार तो वह ठिठका, लेकिन फिर हिम्मत करके वह उस पर चढ़ने लगा। वह चढ़ता चला गया, चढ़ता चला गया; लेकिन डंडे खत्म ही नहीं हो रहे थे। आखिर वह

थक गया। उसके पैर डगमगाने लगे, साँस फूलने लगी और उसने कराहते हुए कहा, "इस तरह चढ़ते-चढ़ते तो मैं स्वर्ग में पहुँच जाऊँगा।"

वह वापस लौटने की बात सोच ही रहा था कि उसे पेड़ पर लकड़ी का एक ठोस फर्श दिखाई दिया। उसकी जान-में-जान आई। उसने अँधेरे में झाँककर देखा। सामने एक लकड़ी की कोठरी थी। उसके दरवाजे की दरार में से प्रकाश की हलकी किरण चमक रही थी। वह धीरे-धीरे उसके पास पहुँचा। उसी समय अन्दर से कड़कड़ाहट की आवाज़ आई। कोठरी का दरवाज़ा खुल गया और एक बहुत ही डरावना जिन्न बाहर निकला। उसकी आँखें थाली जितनी बड़ी थीं। नाक टेढ़ी, दाँत जंगली जानवर के जबड़े जैसे और मुँह गुफा के समान लम्बा-चौड़ा। इसके बोझ से वह फर्श चरमराने लगा। बिजली की तरह कड़ककर उसने दर्जी से पूछा, "तुम यहाँ क्यों आए हो ?"

दर्जी सहम गया और बुरी तरह काँपने लगा। लेकिन वह बहादुर आदमी था। उसकी बुद्धि तेज़ सुई की तरह पैनी थी। इसलिए पल-भर में ही उसने अपने-आपको सँभाल लिया और जवाब दिया, "जनाब, आपको कष्ट देने का मुझे बहुत दुख है। लेकिन मेरे मालिक हज़रत सुलेमान को अपनी जाड़ों की पोशाक के लिये एक बहुत बढ़िया खाल की ज़रूरत है। आप मुझे माफ करें, इस काम के लिए मैं आपकी खाल उतारने आया हूँ।"

यह कहकर उसने अपनी कैंची आगे बढ़ाई। अब तो जिन्न काँपने लगा। उसका शरीर बहुत भारी था, लेकिन उसका दिमाग चिड़िया के दिमाग से भी छोटा था। वह दर्जी की खुशामद करने लगा, "आप किसी और की खाल ले जाइए। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी। मैं आपको बहुत-सा धन दूँगा।"

दर्जी यह सुनकर मन-ही-मन बहुत खुश हुआ, लेकिन ऊपर से वह गम्भीर बना रहा। बोला, "तुम कहते हो तो चला जाऊँगा, लेकिन यह काम है बड़ा मुश्किल।"

लेकिन जिन्न तो उसकी बात सुनने के लिए वहाँ ठहरा ही नहीं। वह तुरन्त कोठरी में चला गया। थोड़ी देर बाद लौटा तो उसके हाथ में मोहरों का थैला था। दूसरे में कुछ चमकीले रत्न थे। वे सब चीजें उसने दर्जी को दीं और गिड़गिड़ाकर कहा, "महाराज, कहीं और चले जाइए। मुझे शान्ति से रहने दीजिए।"

यह कहते-कहते उसने दर्जी को सीढ़ी पर से धकेल दिया। बेचारा दर्जी ! उसे यह भी पता न था कि वह सर पर खड़ा है या पैरों पर। उस धन को सँभाले हुए वह रात उसने पड़े के नीचे ही बिताई। सवेरा होने पर वह घर लौट गया। अपने कस्बे में आकर वह एक राजकुमार की तरह रहने लगा। वहाँ के लोग यह सब देखकर बड़े हैरान हुए। उस जुलाहे के अचरज का तो कोई ठिकाना ही न रहा। एक दिन शाम को वह अपने दोस्त के यहाँ पहुँचा और उसकी चापलूसी करने लगा। धीरे-धीरे बहला-फुसलाकर उसने सारी कहानी मालूम कर ली। फिर उसने दर्जी से कहा, "हम लोगों को एक बार और वहाँ चलना चाहिए। वह जिन तो बिलकुल मूर्ख है। हम उससे बहुत आसानी के साथ और भी ज्यादा दौलत हासिल कर सकते हैं।"

दर्जी तो अब निडर बन चुका था। वह तुरन्त तैयार हो गया और एक दिन फिर वे दोनों दोस्त यात्रा पर निकल पड़े। तीन दिन के बाद वे उस वन में पहुँचे। वे बहुत थक गए थे। अँधेरा भी काफी हो चुका था। लेकिन वे सीढ़ी पर चढ़ते चले गए। उधर पहुँचने पर उन्होंने देखा—वहाँ बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ है। कोठरी के अन्दर से साँस लेने तक की आवाज़ नहीं आ रही थी। वह सोचने लगे, 'क्या वह जिन वहाँ से चला गया है ?' लेकिन तभी एक भयानक शोर की आवाज़ उनके कानों में आई। उन्होंने झुककर नीचे देखा, कोई बीस-पच्चीस जिन्न हवनकुंड के चारों ओर पालथी लगाए बैठे थे। वे ज़ोर-ज़ोर से डरावनी आवाज़ में हजरत सुलेमान की सेवा में प्रार्थना के मन्त्र पढ़ रहे थे।

बड़ा डरावना दृश्य था। जुलाहा तो इतना डरा कि सीधा ऊपर से लुढ़ककर ठीक जिनों के बीच में जाकर गिरा। लेकिन दर्जी ने अब भी अपने होश नहीं खोए। वह बड़े जोर से ऊपर से चिल्लाया, "जल्दी करो। सबको पकड़ लो। कोई जाने न पाए। मैं कैंची और गज़ लेकर एक मिनट में नीचे आता हूँ।"

अब तो पेड़ के नीचे एक उपद्रव खड़ा हो गया। चीखते-चिल्लाते एक-दूसरे को धक्का देते वे सब जिन्न वहाँ से भाग गए। बेचारा पुरोहित तो बिलकुल बेहोश हो गया। दर्जी नीचे उतरा और उसने देखा कि पुरोहित के पास बहुमूल्य रत्नों का ढेर लगा हुआ है। सोने से भरी एक बोरी भी रखी हुई है। बस, उसने जुलाहे को उठाया। उसे तसल्ली दी। इसके बाद वे दोनों दोस्त जितना भी धन उठा सकते थे, उठाकर उसी समय घर की ओर चल पड़े।

वह धन इतना अधिक था कि बड़े-से-बड़ा लालची भी उसकी कल्पना नहीं कर सकता। दोनों ने उसे बराबर बाँट लिया और राजसी ठाट-बाट के साथ रहने लगे।

यह पुरानी कहानी है। जिन आजकल कहीं नहीं रहे, पर यह बात बिलकुल सही है कि जो साहसी हैं उनकी सब कहीं पूजा होती है। वह जो चाहते हैं वही उन्हें मिलता है।

●●●

बाल-साहित्य

## देश-विदेश की सचित्र लोककथाएं

हिमाचल की लोककथाएं
बिहार की लोककथाएं
राजस्थान की लोककथाएं
बंगाल की लोककथाएं (पुरस्कृत)
हरियाणा की लोककथाएं (पुरस्कृत)
पड़ोसी देशों की लोककथाएं
असम की लोककथाएं
पंजाब की लोककथाएं
मध्यप्रदेश की लोककथाएं
उत्तर प्रदेश की लोककथाएं

## प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी
बड़े घर की बेटी
सुजान भगत
परीक्षा
शतरंज के खिलाड़ी
दो बैलों की कथा
मां की ममता
शिकारी राजकुमार
गुल्ली-डण्डा
रानी सारंधा
नमक का दरोग़ा
रामलीला
पंच परमेश्वर
मन्दिर
ईद का त्योहार
सबसे बड़ा तीर्थ
कुत्ते की कहानी
मेरी कहानी
रामकथा
जंगल की कहानियां

## रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल-कहानियां

भोला राजा
काबुलीवाला
पारसमणि
मास्टरजी
तोते की कहानी
राजा का न्याय

ISBN 81-7028-353-1

राजपाल